

भारतीय साहित्य के निर्माता

कल्कि

रा. मोहन

कल्कि

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

कल्कि

रा. मोहन

तमिष्र से अनुवाद

एन. श्रीधरन



साहित्य अकादेमी

Kalki : Hindi translation by N. Sreedharan of R. Mohan's monograph in Tamil on 'Kalki' R. Krishnamurthy, eminent Tamil writer and novelist, Sahitya Akademi, New Delhi (2007), Rs. 25.00

प्रथम संस्करण : 2007

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली-110 001
विक्रय विभाग, स्वाति, मंदिर मार्ग, नयी दिल्ली-110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई-400 014
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता-700 053
सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बंगलौर-560 001

चेन्नई कार्यालय
मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443(304)
अन्नासालइ, तेनामपेट, चेन्नई-600 018

ISBN 81-260-2528-X

मूल्य : पच्चीस रुपये

शब्द-संयोजक एवं मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

अनुक्रमणिका

1

जीवन की एक झाँकी

"तमिऴ साहित्य के उद्घाटन में कोंपलों, टहनियों एवं शाखाओं से समृद्ध तथा दृढ़ता से स्थापित एक विराट् वट वृक्ष के समान थे कल्कि। इस वट वृक्ष में फूलकर और फलकर फिर सुगन्धि और सुस्वाद फैलानेवाले बहुत-से लेख प्रकट हुए और बहुत-सी कहानियाँ प्रकाश में आईं। इसके अलावा, वह वट वृक्ष अपने चारों ओर विभिन्न लेखक रूपी लताओं को घिरने देकर उनके सफल होने के लिए भी एक आधार स्तम्भ बन गया था।"

कला ठाकुर[1]

कावेरी का सुपुत्र

तमिलनाडु के खलिहान के रूप में ख्याति-प्राप्त तंजाऊर ज़िले में मायवरम (आजकल मयिलाडुतुरै) शहर से आठ मील (13 कि. मी.) दूर पर स्थित पुत्तमंगलम नामक एक छोटे-से गाँव में रा. कृष्णमूर्ति (उपनाम कल्कि) का जन्म हुआ। उनके पिताजी का नाम रामस्वामी अय्यर था।[2] उनको लोग स्नेह से 'पोन्नु' (स्वर्ण) पुकारते थे। कल्कि का गाँव कावेरी नदी पर स्थित होने से भी सुंदाजी (जिन्होंने तमिऴ में कल्कि की जीवनी 900 पृष्ठों में लिखी है) का कहना है कि कल्कि श्री पोन्नु के सुपुत्र तो हैं ही, साथ-साथ पोन्नि (कावेरी नदी का एक नाम) के भी सुपुत्र हैं।[3] कल्कि के पिताजी रामस्वामी अय्यर पास के मणल्मेडु नामक गाँव में पटवारी का काम करते थे।

कल्कि की माताजी का नाम तैयलनायकी (नारियों में नायिका) था। वे रामस्वामी अय्यर की द्वितीय पत्नी थीं। रामस्वामी अय्यर-तैयलनायकी दंपत्ति के

1. *कल्कि अमृतम्*, पृ. 12.
2. अय्यर शब्द स्मार्त ब्राह्मणों को सूचित करता है।
3. 'पोन्नियिन् पुदलवर' (कावेरी का सुपुत्र), सुंदा (एम. आर. एम. सुंदरम), पृ. 23.

द्वितीय पुत्र के रूप में कल्कि का जन्म 9 सितंबर 1899 को (विकारी वर्ष श्रावण महीने में पच्चीस तारीख़ को) शनिवार के दिन हुआ। उनके बड़े भाई का नाम वेंकटरामन था। फिर दो छोटी बहनें हुईं। अंत में एक छोटा भाई भी हुआ—नाम जगदीशन।

बचपन

बहुत छोटी अवस्था में ही कल्कि ने अपने भाई वेंकटरामन के संग बैठकर अपने पिताजी से बहुत-से भजनगीत सीख लिए। भाई से भी पहले उन भजनों को कंठस्थ करके और सबके समक्ष उनको सुनाकर कल्कि लोगों को चकित कर देते थे।

गाँव में स्वामीनाथ अय्यर नामक अध्यापक द्वारा उनका अक्षराभ्यास हुआ और उनसे प्रारंभिक गणित की शिक्षा भी मिली। कल्कि को हर विषय तत्क्षण सीखते देखकर स्वामीनाथ अय्यर आश्चर्य में पड़ जाते थे। अन्य लोगों के सामने भी शिष्य की प्रतिभा का उल्लेख कर वे सबसे अपनी खुशी बाँट लेते थे।

अग्रज वेंकटरामन और अनुज कल्कि पहले स्वामीनाथ अय्यर से और फिर अय्यासामी अय्यर से मणलूमेडु गाद्दव में पांडुरंग विद्यालय नामक संस्था में शिक्षा प्राप्त करते थे। अय्यासामीजी यह देखकर प्रभावित हुए कि कल्कि किसी भी विषय को जल्दी सीखने की क्षमता रखते थे और सीखे विषय को ख़ूब याद भी करते थे। इसके अलावा, वे अपनी उम्र की सामर्थ्य के बाहर के बहुत-से विषय जानते थे। अय्यासामीजी गाँव में सर्वत्र अपने इस मेधावी छात्र की प्रशंसा करते थे और उसकी प्रतिभा के विकास के लिए प्रोत्साहन देते थे।

रामस्वामी अय्यर भी यह देखकर आनंदित हो उठे कि पुत्र कृष्णमूर्ति आठ साल की उम्र का होने पर भी संध्यावंदन और जप करता था और भजन सुनाता था। जब वे घर की चौपाल पर बैठकर गाँववालों को पौराणिक कथाएँ सुनाते थे, तब पुत्र को गूढ़ प्रश्न पूछते देखकर प्रसन्न हो जाते थे। लंबी आयु प्राप्त न होने से उनकी खुशी ज़्यादा समय तक टिक न सकी। पुत्र के यज्ञोपवीत संस्कार के छठे महीने रामस्वामी अय्यर का देहावसान हो गया। उस समय कल्कि केवल नौ वर्ष के थे।

किताबी कीड़ा

अपने पिताजी को अचानक मृत्यु के मुँह में खोकर कल्कि और वेंकटरामन तड़पने लगे। इस दयनीय स्थिति में उनके पड़ोसी अय्यासामी अय्यर और उनकी पत्नी अभयांबाळ् ने दोनों लड़कों को सांत्वना देकर हर तरह से उनकी सहायता की। विशेष रूप से, गुरु की हैसियत से, अय्यासामी अय्यर ने कल्कि को ज्ञान-विज्ञान के कई विषयों से परिचित करा दिया। उनका मार्गदर्शन प्राप्त करके पंद्रह वर्ष की उम्र के होने

के पहले ही कल्कि ने भारी-भरकम तमिष़ ग्रंथ और कठिन शैली की अंग्रेज़ी पुस्तकों को पढ़ने और समझने की क्षमता प्राप्त कर ली। उन दिनों उनके हाथ में हमेशा कोई-न-कोई पुस्तक विराजमान रहती थी। वे इतने अध्ययनशील थे कि स्वयं गुरु अय्यासामीजी उनको किताबी कीड़ा कहकर उनसे दिल्लगी करते थे। आगे चलकर कल्कि ने 'प्रारंभिक गुरु' शीर्षक अपने एक लेख में अय्यासामीजी के प्रति कृतज्ञता और सम्मान की भावना प्रकट की है। उसका एक अंश इस प्रकार है—

"अगर आजकल मैं विभिन्न विषयों पर लेखादि अच्छा लिख पाता हूँ, तो यह सब मेरे प्रारंभिक अध्यापक की कृपा से ही संभव हो सका है। वे जिस दिशा में रहते हैं (मतलब गाँव में) उस ओर दंडवत् प्रणाम करता हूँ। कहावत है कि पाँच साल की उम्र में हमारे व्यक्तित्व को उचित साँचे में ढालने का काम प्रारंभिक विद्यालय के अध्यापक ही करते हैं। अगर वे किसी बालक के व्यक्तित्व को टेढ़ा मोड़ दें, तो वह आजीवन टेढ़ा ही रहेगा। देश की भावी प्रजा के चरित्र का निर्माण प्राथमिक विद्यालयों में ही होता है। लोगों का बबर शेर जैसे निडर बनना या कायर गुलाम बन जाना प्रारंभिक विद्यालय के अध्यापकों के हाथ का ही कमाल है।"[1]

इस मंतव्य के आधार पर हम अनुमान लगा सकते हैं कि अपने गुरु अय्यासामीजी से प्राप्त भाषा-ज्ञान, सामान्य ज्ञान और भक्ति भावना, ये तीनों ही आगे चलकर लेखक के रूप में कल्कि के विकसित होने के बुनियादी कारण बने। अय्यासामीजी के प्रति कल्कि के मन में व्याप्त गुरु भक्ति की भावना से उनका मन परिष्कृत होकर प्रौढ़ता को प्राप्त हो गया।

यही गुरु भक्ति आगे चलकर कल्कि के मन में राजाजी और गाँधीजी के प्रति श्रद्धापूर्ण भक्ति के उदय होने का भी मज़बूत कारण बनी।

चलो तिरुच्चि[2]

आर्थिक दृष्टि से कल्कि की पारिवारिक स्थिति पहले ही संतोषजनक नहीं थी। इधर पिताजी की मृत्यु हो जाने से कल्कि की शिक्षा अवरुद्ध हो गई। सातवीं कक्षा के आगे पढ़ाई जारी रखना असंभव हो गया। दोनों भाई आसपास के गाँवों में घूमकर कथा-प्रवचन करके कुछ कमा लेते थे। अय्यासामीजी की सिफ़ारिश पर तिरुच्चि में रहनेवाले कल्कि के चाचा-चाची (वेंकटाचलम् अय्यर और धर्मी अम्माल्) उनकी पढ़ाई

---

1. *एट्टिक्कु पोट्टि* (नहले पर दहला), निबंध-संग्रह, पृ. 81, 83.
2. तिरुच्चि (तिरुच्चिरापल्ली का संक्षिप्त रूप) तमिलनाडु में तीसरा बड़ा शहर है। श्रीरंगम शहर, जहाँ भी रंगनाथरजी का मंदिर है, इसी शहर से जुड़ा है।

में मदद करने के लिए तैयार हुए। उनके निमंत्रण पर कल्कि गाँव छोड़कर तिरुच्चि पहुँच गए। वहाँ हिन्दू सेकंडरी स्कूल में 16 अक्तूबर 1917 को आठवीं कक्षा में भर्ती हुए। उन्होंने पाठ्यक्रम के सभी विषयों में अच्छे अंक पाकर अव्वल दर्जे के छात्र के रूप में नाम कमाया। फलतः पढ़ाई, भोजन और आवास के लिए छात्रवृत्ति पाकर, वे नेशनल हाईस्कूल नामक राष्ट्रीय संस्था में भर्ती हुए। वहाँ ग्यारहवीं (आख़िरी) कक्षा तक पढ़ाई की।[1]

उन दिनों कल्कि तमिष़ उपन्यासों को पढ़ने के लिए बहुत लालायित रहते थे। उस ज़माने के लोकप्रिय उपन्यासकार आरणि (शहर) कुप्पुसामी मुदलियार, वडुवूर (गाँव) दुरैस्वामी अय्यंगार और जे.आर. रंगराजू थे। कल्कि इन उपन्यासकारों की कृतियों को ढूँढ़कर उधार में पढ़ लेते थे या पुस्तकालयों में बैठकर पढ़ते थे।

कल्कि ने एक बार मुत्तु[2] नामक अपने एक मित्र से कहा, "हर रोज़ ऐसा एक उपन्यास मुझे पढ़ने को मिल जाए, तो मुझे जीवन में कुछ और नहीं चाहिए। राबिन्सन क्रूज़ो[3] जैसे भी किसी सुनसान टापू में दीर्घ काल तक ठहरना पड़े और मेरे हाथ कुप्पुसामी मुदलियार वग़ैरह लेखकों के उपन्यास हो, तो मैं वहाँ बड़े मज़े से रहा करूँगा।"[4]

अंग्रेज़ी उपन्यासों को पढ़कर समझ लेने की क्षमता उन्होंने गाँव में ही प्राप्त कर ली थी। फलस्वरूप वे तिरुच्चि आने के बाद जाने-माने विदेशी लेखकों के उपन्यास पढ़ पाते थे। उनमें विक्टर ह्यूगो, अलेक्सांडर डूमा, सर वॉल्टर स्काट, चार्ल्स डिकेन्स, विलियम थाकरे, थामस हार्डी, एडगर वालेस, विलियम रेनाल्ड्स मुख्य हैं। इन उपन्यासकारों का प्रभाव कल्कि के तरुण मन की गहराई तक पहुँचकर और कालांतर में परिमार्जित होकर उन रचनाओं के लिए खाद बना, जो वर्षों बाद उनकी लेखनी से निसृत हुईं।

उपन्यासों को कहीं से भी प्राप्त कर पढ़ने के अलावा मंच पर कथा-प्रवचन करने की कला के प्रति भी कल्कि बचपन से तीव्र रूप से आकृष्ट थे। उन दिनों कई संगीतज्ञ कथा-प्रवचन करने में निपुण थे। उनमें तंजाऊर कृष्ण भागवतर, सूलमंगलम् वैद्यनाथ भागवतर, हरिकेशनल्लूर मुत्तैया भागवतर, तिरुपलनम् पंचापकेश भागवतर, मांगुडी चिदंबर भागवतर आदि के कथा-प्रवचनों को सुनने के लिए कल्कि अपने भाई वेंकटरामन के साथ जगह-जगह जाते थे और सुनकर प्रसन्न हो जाते थे। इन गहन-गंभीर कथा-प्रवचनों के बीच-बीच में हास्य का पुट भी होता था। बचपन के इस

---

1. उन दिनों 1122 शिक्षा प्रणाली चल रही थी।
2. पूरा नाम मुत्तुकृष्णन। ये रामकृष्ण मठ में स्वामी रुद्रानंद के नाम से संन्यासी हो गए।
3. देखे आर. एल. स्टीवेन्सन का इस नाम का उपन्यास।
4. *सवदेश मित्तन्* (साप्ताहिक) 7.12.1935.

कथा-श्रवण के दीर्घ अनुभव की ही देन है कि कल्कि जब लेखक बने, तब कहानियों को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने और उनमें हास्य का समावेश करने में वे अत्यधिक सफल हुए।

स्वभाषा-प्रेम एवं देश-प्रेम

कल्कि के हृदय में पहले ही भगवद्-भक्ति और गुरु-भक्ति को सर्वोच्च स्थान मिल चुका था। आयु के बढ़ते-बढ़ते उनके हृदय में तमिष़ भाषा और भारत देश के प्रति भी श्रद्धा भाव और अनन्य प्रेम पनपने लगा। इसके स्रोतों के रूप में क्रमशः आल्वार नामक बारह वैष्णव संतों के स्तुति-गीत और महाकवि सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) की कविताओं को मान सकते हैं। इस संबंध में कई वर्षों के बाद कल्कि ने स्वयं जो कुछ कहा है, उसे यहाँ उद्धृत करना उपयुक्त रहेगा—

> "पहले पहल दस वर्ष की आयु में भारती के गीतों को मैंने पढ़ा था। मैं सोचता हूँ कि तब से लेकर आज तक मेरे जीवन में एक दिन भी ऐसा नहीं बीता होगा, जब मैंने भारती की पंक्तियों को गुनगुनाया न हो या दूसरों को गाते न सुना हो।"[1]

तमिष़ भाषा के प्रति अपनी श्रद्धा के उद्गम के संबंध में कल्कि ने अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है—

> "आल्वारों के स्रोत गीतों के अध्ययन के द्वारा ही मैंने पहले पहल तमिष़ काव्य के रसास्वादन का अनुभव किया था। जब मैं दस साल की उम्र का था, तब *श्री कृष्णचैतन्य स्वामी चरितम* नामक एक तमिष़ पुस्तक निकली थी। वह एक वैष्णव संत की जीवनी थी, जो बंगाल में चार सौ वर्ष पहले जीवित थे। इस जीवनी के लेखक ने तुलना के रूप में बीच-बीच में *दिव्य प्रबंधम्*[2] से कुछ भक्ति-गीतों को प्रस्तुत किया था। विशेष रूप से निम्नलिखित पंक्तियों से शुरू होनेवाले चार गीतों को मैंने जितनी बार पढ़ा होगा, यह कह नहीं सकता—
>
> 1. आनाद सेलवत्तु..., 2. कंब मद यानै..., 3. आल मामरत्तिन्..., 4. कोण्डल् वण्णनै...[3]

---

1. *पोन्नियिन पुदल्वर*, पृ. 62.
2. आल्वार संत-कवियों के चार हज़ार भक्तिपूर्ण कविताओं का संकलन।
3. प्रथम दो पद्य कुलशेखर आलवार के हैं, जो रसखान जैसे ही सब ऐश्वर्यों को ठुकराकर विष्णु की क्रीड़ास्थली में किसी वस्तु के रूप में जन्म लेना बेहतर समझते हैं। पद्य 3 और 4 निरुप्पाण् आल्वार के हैं। इनमें वे कहते हैं कि जिन आँखों से श्रीकृष्ण के दर्शन किए, उनसे कोई और वस्तु वे देखना नहीं चाहते।

स्कूल में पढ़ते समय परीक्षा के लिए मैंने जितने पद्य और गीत कंठस्थ किए थे, वह सब तो मैं भूल चुका हूँ, परन्तु आल्वरों के ये चार गीत कभी दिल से उतरे नहीं।"[1]

स्कूली जीवन में क्रांतिकारी मोड़

सन् 1921 भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण वर्ष रहा है। उस वर्ष के प्रारंभ में गाँधीजी के नेतृत्व में हज़ारों भारतीय अपने स्वार्थ को बिलकुल भूलकर मातृभूमि की आज़ादी के लिए संपूर्ण मन और पूर्ण लगन से संघर्ष करने में तल्लीन हो गए। गाँधीजी का आह्वान सुनकर और उनकी आज्ञा मानकर स्वतंत्रता के संग्राम में कूद पड़नेवाले हज़ारों युवकों में कल्कि भी एक थे। उस समय वे ग्यारहवीं (आख़िरी) कक्षा में पढ़ रहे थे। वार्षिक परीक्षा के लिए तीन महीने ही बाक़ी थे। ठीक इस समय कल्कि के जीवन में एक नया मोड़ उपस्थित हुआ। तत्कालीन शिक्षा प्रणाली की कमियों को नज़र में रखकर, "नर केसरी की उपाधि से मशहूर डॉ. टी.एस.एस. राजन"[2] जैसे राष्ट्रीय नेताओं की पुकार सुनकर और खुद भी गहराई से सोच-विचारकर कल्कि स्कूल की शिक्षा अधूरी छोड़कर बाहर निकल आए।

कई वर्ष बाद कल्कि ने *आनंद विकटन* पत्रिका के 10.4.1934 के अंक में प्रकाशित अपने एक लेख में स्वीकार किया है कि डॉ. राजन के भाषणों के चुंबकीय शब्दों के प्रभाव से ही उन्होंने स्कूल की पढ़ाई छोड़ दी थी। वे लिखते हैं—

"सन् 1921 के शुरू में डॉ. राजन के ज़ोरदार भाषण सुन-सुनकर ही मैंने अपनी पाठ्य-पुस्तकों की पोटली बाँधकर उसे कावेरी नदी में डुबो दिया। इस तरह स्कूल छोड़कर मैं बाहर आ गया। अगर ये महाशय मेरे जीवन में दख़ल न देते, तो भगवान के भरोसे आराम से परीक्षा लिखता और पास होकर नौकरी की तलाश में निकल पड़ता।"[3]

बड़ा ही अच्छा हुआ कि कल्कि ने सिर्फ़ पोथी पढ़-पढ़कर डिग्री लेने की शिक्षा नहीं पाई। बाद में लेखक के रूप में उन्होंने तत्कालीन शिक्षा पद्धति की कड़ी आलोचना वाले कई लेख लिखे हैं। अगर वे सरकार के लिए बाबुओं की उत्पत्ति करनेवाली पढ़ाई को जारी रखते और डिग्री ले लेते, तो सिर्फ़ दुनिया की आबादी बढ़ानेवाले नगण्य मनुष्यों में और एक बनकर मामूली जीवन बिताते। वे कभी लेखक नहीं बनते और तमिष़ साहित्य एक श्रेष्ठ रचनाकर्त्ता के योगदान से वंचित रह जाता।

---

1. कल्कि की भूमिका, *दिव्य प्रबंध सारम्*, संकलनकर्त्ता : पी. श्रीनिवासाचार्य
2. राजनजी लंदन में वीर सावरकर के सहयोगी बनकर आज़ादी के लिए गुप्त रूप से काम करते थे।
3. *पोन्नियिन पुदलवर*, पृ. 98.

बापू के आशीर्वाद

स्कूल की पढ़ाई छोड़ देने के बाद कल्कि कांग्रेस की गतिविधियों में सरगर्मी से भाग लेने लगे। जिस तरह स्कूल में पढ़ते समय वे एक उत्कृष्ट छात्र माने जाते थे, उसी तरह जल्दी ही उन्होंने कांग्रेस के एक श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता के रूप में नाम कमाया। कांग्रेस के विभिन्न कार्यक्रमों में वे उत्साह और ज़िम्मेदारी की भावना के साथ हिस्सा लेते थे। यद्यपि वे गाँधीजी के विचारों को ख़ूब पढ़ते और सुनते आ रहे थे, तो भी उनको देखा नहीं था। जब 18 सितंबर 1921 को तिरुच्चि शहर में गाँधीजी की सभा में उन्होंने भारती के देशभक्तिपूर्ण गीत सुनाए और उपस्थित लोगों से वसूल की गई रक़म को गाँधीजी के कर कमलों में सौंप दिया तो गाँधीजी ने उनकी पीठ पर स्नेह से हाथ फेरकर कहा, "अच्छा देशसेवक!" कल्कि पुलकित हो उठे। अब तक गाँधीजी के प्रति कल्कि में मन में जो भक्ति मुकुलित अवस्था में थी, वह उनके दर्शन के बाद पूरी छटा के साथ खिलकर सुगंध फैलाने लगी। गाँधीजी के असहयोग आंदोलन ने युवक कल्कि को पूर्णरूप से आकृष्ट कर लिया। कल्कि को 1921 में गाँधीजी के दर्शनमात्र मिले। फिर बारह साल बाद 1933 में गाँधीजी के साथ एक बार वार्तालाप करने का अवसर भी उनको मिला।

जेल के अंदर प्रथम बार

गाँधीजी के आदेश पर कल्कि ने ज़ोर-शोर से असहयोग आंदोलन में भाग लिया और जगह-जगह जाकर जोशीले भाषण दिए। करूर शहर में भाषण देते समय वे क़ैद कर लिए गए और उनको एक साल सख़्त कारावास की सज़ा मिली। इस प्रकार सन् 1922 में कल्कि देश के वास्ते प्रथम बार जेल गए। इस प्रथम कारावास के समय तिरुच्चि जेल में उनसे मिलने के लिए उनकी माताजी और चाचीजी आईं। इस दुःखद मिलन का स्मरण करके बाद में कल्कि ने जो लिखा है, उसका एक अंश इस प्रकार है–

> "मेरी माताजी और चाचीजी जेल में मुझसे 'इंटरव्यू' करने आई थीं। जब मैं क्वारंटीन' (बीमारी की आशंका से अलग रखा जाना) में था, तभी वे आ पहुँचीं। इसलिए जेल के द्वार पर ही उनसे भेंट हो गई। मेरे पैरों में झनझनाती ज़ंजीर सहित बेड़ियाँ पड़ी थीं। घुटने के ऊपर तक ही पहुँचनेवाला धारीदार हाफ़ पैंट और छोटे बाँहवाला कुरता पहना हुआ था। इस 'ख़ूबसूरत' वेश में जब मैं उनके निकट आया, तब वे मुझे पहचान ही नहीं सकीं। मैंने ही जब उनके पास पहुँचकर पूछा, "आप दोनों ने इतनी जल्दी आकर मिलने की क्यों तकलीफ़ उठाई?' तभी वे मुझे पहचान सकीं। माताजी के मुँह से शब्द ही नहीं निकला। वह भौचक्की होकर मुझे एकटक देखती रह गईं। चाचीजी रोने और

विलाप करने लगीं, 'क्या तुम्हें इस भेस में देखने के लिए ही तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म दिया था?" मैंने दोनों को तसल्ली देते हुए कहा, "माँ, तुझको यह क़सर रहता था कि पहनने के लिए मेरे पास कोई गहना नहीं है। अब देखो ये कड़े और चेन (हार)।" लेकिन वे मेरी हास्योक्ति का रसास्वादन नहीं कर पाईं। शोकोक्ति के रूप में उसका अर्थ लेकर वे ज़्यादा दुःख प्रकट करने लगीं।"[1]

कल्कि ने जिस सभा में भाषण दिया था, उसके सभापति नामक्कल् (शहर) कवि नाम से प्रसिद्ध रामलिंगम पिळ्ळै (1888-1972) थे। इस कारावास को कल्कि ने अपने लिए गौरव माना। यह कारावास अन्य दृष्टियों से भी महत्त्वपूर्ण था। जेल में ही कल्कि अपने छिपे लेखक को पहचान पाए। यहाँ उन्होंने *विमला* नामक एक अपना उपन्यास लिख डाला। यह बाद में अप्राप्य हो गया। जेल में ही टी. सदाशिवम (प्रसिद्ध गायिका एम. एस.सुब्बुलक्ष्मी के पति) से उनका परिचय हुआ और संपर्क बढ़ा। सदाशिवम की मित्रता और सहायता कल्कि को उनकी आख़िरी साँस तक मिलती रही। (बाद में वे परस्पर समधी बन गए। सदाशिवम के भतीजे रामचंद्रन का विवाह कल्कि की पुत्री आनंदी से और उनकी पुत्री विजया का विवाह कल्कि के पुत्र राजेन्द्रन से हुआ।)

पत्रकारिता में पहला क़दम

सन् 1923 के प्रारंभ में कल्कि तिरुच्चि में कांग्रेस के दफ़्तर में तीस रुपए के वेतन पर मुंशी और प्रचारक बने। उसी वर्ष बीच में कुछ समय ईरोडु शहर में खादी बोर्ड में नौकरी की। जब राजाजी निरीक्षण के लिए आए, तब कल्कि का काम देखकर वे संतुष्ट हुए। यह प्रथम भेंट आजीवन मित्रता के रूप में परिवर्तित हो गई। राजाजी को कल्कि पूज्य गुरु मानने लगे और कल्कि को राजाजी छोटे भाई जैसे मानते थे।

इस घटना के पश्चात् कल्कि के जीवन में एक नया मोड़ आया। वे अक्टूबर में तिरुच्चि छोड़कर चेन्नै में रहने के लिए आ पहुँचे। कांग्रेस के कार्यकर्त्ता का काम छोड़कर उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। अनुवाद-कार्य करने में कुशलता, बिना ग़लती के तमिष़ लिखना और डॉ. राजन का सिफ़ारिश पत्र, इन तीनों के भरोसे ही उन्होंने जीविका के लिए पत्रकारिता का क्षेत्र चुन लिया।

कल्कि ने इसका ज़िक्र अपनी पुस्तक *भारती पिरंदार* (भारती का जन्म हुआ) में इस प्रकार किया है, "लेखकों की दुनिया में जब कभी मुझ पर कोई प्रहार हुआ, तब उसे चुपचाप स्वीकार करके मन ही मन तिरुच्चि के देशभक्त डॉ. राजनजी को

---

1. *मून्‌/ मादम् कडुं कावल्* (तीन महीनों का सश्रम कारावास), पृ. 27-28

प्रेषित कर देता था क्योंकि उन्होंने ही तो मेरा गला पकड़कर लेखकों की दुनिया में मुझे ढकेल दिया था।" (पृ. 15)

डॉ. राजन के सिफ़ारिशी पत्र (दि. 20.10.1923) के कारण कल्कि को प्रसिद्ध तमिष़ विद्वान तिरु. वि. कल्याणसुंदर मुदलियार (1883-1953) की *नवशक्ति* पत्रिका में पचास रुपए के मासिक वेतन पर सहायक संपादक का पद मिला। उसी पत्रिका में विश्वसाहित्य के पंडित और गंभीर शैली के लेखक वे. स्वामीनाथ शर्मा भी काम करते थे। इस अनुकूल परिस्थिति में पत्रकारिता के क्षत्र में तेज़ी से आगे बढ़ना कल्कि के लिए संभव हो गया।

नवशक्ति पत्रिका में काम करते समय कल्कि 'तमिष़ तेनी' (मधुमक्खी) उपनाम से संसार के कोने-कोने के तरह-तरह के समाचार इकट्ठा करके दिलचस्प ढंग से पत्रिका में समावेश कर देते थे।

पत्रिका के लिए 'अगासितयर' उपनाम से कुछ अच्छी कहानियों की रचना की। उनमें 'विष मंत्रम्', 'गवर्नर विजयम्' (आगमन), 'शारदैयिन तंत्रम' (शारदा की तरकीब) 'औनबदु कुषि निलम' (नौ फुटवाली ज़मीन) 'तर्‌कोलै' (आत्महत्या), 'सुभद्रैयिन् सहोदरन्' (सुभद्रा का भाई) आदि मुख्य हैं।

'पेना चित्रम्' (तूलिका चित्र) शीर्षक से उन्होंने विभिन्न अधिवेशनों और सभाओं के कार्यक्रम की रोचक जानकारी दी।

गाँधीजी की महान रचना *आत्मकथा* का अनुवाद तमिष़ में करके उसका शीर्षक *सत्य सोधनै* (सत्य की परख) रखा।

कल्कि मूलतः सृजनात्मक लेखक थे। वे समझ गए कि उनकी प्रतिभा के पूर्ण विकास और फैलाव के लिए *नवशक्ति* पत्रिका में ज़्यादा गुंजाइश नहीं है। वह पत्रिका राजनीतिक समाचार, शैव दर्शन का प्रतिपादन और मज़दूर संघों की गतिविधियों को प्राथमिकता देती थी। इसलिए लगभग पाँच साल वहाँ काम करने के बाद 1928 में कल्कि ने वह नौकरी छोड़ दी। फिर भी प्रसिद्ध लेखक और समाज-सेवक कल्याणसुंदर मुदलियार के अधीन इतने वर्ष काम करने के कारण कल्कि पत्रकारिता के बुनियादी सिद्धांतों का परिचय तथा संपादन आदि में व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त कर सके। *नवशक्ति* में प्राप्त अनुभव उनको आगे चलकर साप्ताहिक पत्रिका के क्षेत्र में अपनी धाक जमाने और उपलब्धियाँ जुटाने के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

'खद्दर दूल्हा'

सन् 1924 मार्च महीने में कल्कि के बड़े भाई और अन्य रिश्तेदार कल्कि से पूछे बिना उनके विवाह के लिए पहल करने लगे। तलैयूर नामक गाँव में एक कन्या को देखकर उसे दुलहिन के रूप में तय भी कर लिया। बड़े भाई वेंकटरान ने इस संबंध में कल्कि

विलाप करने लगीं, 'क्या तुम्हें इस भेस में देखने के लिए ही तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म दिया था?" मैंने दोनों को तसल्ली देते हुए कहा, "माँ, तुझको यह क़सर रहता था कि पहनने के लिए मेरे पास कोई गहना नहीं है। अब देखो ये कड़े और चेन (हार)।" लेकिन वे मेरी हास्योक्ति का रसास्वादन नहीं कर पाईं। शोकोक्ति के रूप में उसका अर्थ लेकर वे ज़्यादा दुःख प्रकट करने लगीं।"[1]

कल्कि ने जिस सभा में भाषण दिया था, उसके सभापति नामक्कल् (शहर) कवि नाम से प्रसिद्ध रामलिंगम पिळ्ळै (1888-1972) थे। इस कारावास को कल्कि ने अपने लिए गौरव माना। यह कारावास अन्य दृष्टियों से भी महत्त्वपूर्ण था। जेल में ही कल्कि अपने छिपे लेखक को पहचान पाए। यहाँ उन्होंने *विमला* नामक एक अपना उपन्यास लिख डाला। यह बाद में अप्राप्य हो गया। जेल में ही टी. सदाशिवम (प्रसिद्ध गायिका एम. एस.सुब्बुलक्ष्मी के पति) से उनका परिचय हुआ और संपर्क बढ़ा। सदाशिवम की मित्रता और सहायता कल्कि को उनकी आख़िरी साँस तक मिलती रही। (बाद में वे परस्पर समधी बन गए। सदाशिवम के भतीजे रामचंद्रन का विवाह कल्कि की पुत्री आनंदी से और उनकी पुत्री विजया का विवाह कल्कि के पुत्र राजेन्द्रन से हुआ।)

पत्रकारिता में पहला क़दम

सन् 1923 के प्रारंभ में कल्कि तिरुच्चि में कांग्रेस के दफ़्तर में तीस रुपए के वेतन पर मुंशी और प्रचारक बने। उसी वर्ष बीच में कुछ समय ईरोडु शहर में खादी बोर्ड में नौकरी की। जब राजाजी निरीक्षण के लिए आए, तब कल्कि का काम देखकर वे संतुष्ट हुए। यह प्रथम भेंट आजीवन मित्रता के रूप में परिवर्तित हो गई। राजाजी को कल्कि पूज्य गुरु मानने लगे और कल्कि को राजाजी छोटे भाई जैसे मानते थे।

इस घटना के पश्चात् कल्कि के जीवन में एक नया मोड़ आया। वे अक्टूबर में तिरुच्चि छोड़कर चेन्नै में रहने के लिए आ पहुँचे। कांग्रेस के कार्यकर्त्ता का काम छोड़कर उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। अनुवाद-कार्य करने में कुशलता, बिना ग़लती के तमिष़ लिखना और डॉ. राजन का सिफ़ारिश पत्र, इन तीनों के भरोसे ही उन्होंने जीविका के लिए पत्रकारिता का क्षेत्र चुन लिया।

कल्कि ने इसका ज़िक्र अपनी पुस्तक *भारती पिरंदार* (भारती का जन्म हुआ) में इस प्रकार किया है, "लेखकों की दुनिया में जब कभी मुझ पर कोई प्रहार हुआ, तब उसे चुपचाप स्वीकार करके मन ही मन तिरुच्चि के देशभक्त डॉ. राजनजी को

---

1. *मून्‍/ मादम् कडुं कावल्* (तीन महीनों का सश्रम कारावास), पृ. 27-28

प्रेषित कर देता था क्योंकि उन्होंने ही तो मेरा गला पकड़कर लेखकों की दुनिया में मुझे ढकेल दिया था।" (पृ. 15)

डॉ. राजन के सिफ़ारिशी पत्र (दि. 20.10.1923) के कारण कल्कि को प्रसिद्ध तमिष़ विद्वान तिरु. वि. कल्याणसुंदर मुदलियार (1883-1953) की *नवशक्ति* पत्रिका में पचास रुपए के मासिक वेतन पर सहायक संपादक का पद मिला। उसी पत्रिका में विश्वसाहित्य के पंडित और गंभीर शैली के लेखक वे. स्वामीनाथ शर्मा भी काम करते थे। इस अनुकूल परिस्थिति में पत्रकारिता के क्षत्र में तेज़ी से आगे बढ़ना कल्कि के लिए संभव हो गया।

नवशक्ति पत्रिका में काम करते समय कल्कि 'तमिष़ तेनी' (मधुमक्खी) उपनाम से संसार के कोने-कोने के तरह-तरह के समाचार इकट्ठा करके दिलचस्प ढंग से पत्रिका में समावेश कर देते थे।

पत्रिका के लिए 'अगासितयर' उपनाम से कुछ अच्छी कहानियों की रचना की। उनमें 'विष मंत्रम्', 'गवर्नर विजयम्' (आगमन), 'शारदैयिन तंत्रम' (शारदा की तरकीब) 'औनबदु कुषि निलम' (नौ फुटवाली ज़मीन) 'तर्कोलै' (आत्महत्या), 'सुभद्रैयिन् सहोदरन्' (सुभद्रा का भाई) आदि मुख्य हैं।

'पेना चित्रम्' (तूलिका चित्र) शीर्षक से उन्होंने विभिन्न अधिवेशनों और सभाओं के कार्यक्रम की रोचक जानकारी दी।

गाँधीजी की महान रचना *आत्मकथा* का अनुवाद तमिष़ में करके उसका शीर्षक *सत्य सोधनै* (सत्य की परख) रखा।

कल्कि मूलतः सृजनात्मक लेखक थे। वे समझ गए कि उनकी प्रतिभा के पूर्ण विकास और फैलाव के लिए *नवशक्ति* पत्रिका में ज़्यादा गुंजाइश नहीं है। वह पत्रिका राजनीतिक समाचार, शैव दर्शन का प्रतिपादन और मज़दूर संघों की गतिविधियों को प्राथमिकता देती थी। इसलिए लगभग पाँच साल वहाँ काम करने के बाद 1928 में कल्कि ने वह नौकरी छोड़ दी। फिर भी प्रसिद्ध लेखक और समाज-सेवक कल्याणसुंदर मुदलियार के अधीन इतने वर्ष काम करने के कारण कल्कि पत्रकारिता के बुनियादी सिद्धांतों का परिचय तथा संपादन आदि में व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त कर सके। *नवशक्ति* में प्राप्त अनुभव उनको आगे चलकर साप्ताहिक पत्रिका के क्षेत्र में अपनी धाक जमाने और उपलब्धियाँ जुटाने के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

'खद्दर दूल्हा'

सन् 1924 मार्च महीने में कल्कि के बड़े भाई और अन्य रिश्तेदार कल्कि से पूछे बिना उनके विवाह के लिए पहल करने लगे। तलैयूर नामक गाँव में एक कन्या को देखकर उसे दुलहिन के रूप में तय भी कर लिया। बड़े भाई वेंकटरान ने इस संबंध में कल्कि

को विस्तार से एक पत्र लिखा, फिर चेन्नै जाकर कल्कि से सीधे बात की। यद्यपि परिवार के बड़े-बूढ़े लोग यह विवाह तय कर चुके थे, तो भी कल्कि इसे गुड़िया से विवाह मानकर (क्योंकि दुलहिन केवल बारह-तेरह साल की थी) अपनी सहमति नहीं दे रहे थे। भाइयों के बीच लंबे समय तक वाद-विवाद चला।

अंत में कल्कि ने सुझाव दिया, "अच्छा, इस मसले में हम कल्याणसुंदर मुदलियारजी से सलाह लेंगे। मैं उनकी बहुत इज़्ज़त करता हूँ। वे जैसा कहेंगे, उसी के मुताबिक दोनों करेंगे। तदनुसार दोनों ने कल्याणसुंदरमजी के पास जाकर अपना-अपना तर्क प्रस्तुत किया। शांतचित्त होकर दोनों पक्षों की दलील सुनने के बाद कल्याणसुंदरमजी थोड़ी देर आँखें बंद करके सोच-विचार में डूबे रहे। फिर अपना निर्णय सुनाया, "भाई कृष्णमूर्ति मैं कुछ महीनों से आपकी कार्यशैली पर ध्यान देता आ रहा हूँ। मैं महसूस करता हूँ कि आप भविष्य में बड़े-बड़े काम कर दिखानेवाले हैं। आपके भविष्य के कार्यों के लिए गृहस्थाश्रम से आपको आवश्यक बल प्राप्त होगा। आपके भाई आपके लिए जो कन्या निश्चित कर आए हैं, वह सद्गृहिणी साबित होगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। सब कुछ ईश्वर की आज्ञा के अनुसार ही चलता है। जो कुछ होना है, वह होकर ही रहेगा। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यह विवाह मंगलपूर्वक संपन्न हो जाए।"[1] इस प्रकार विवाह के लिए अपने शुभकामनाएँ व्यक्त करके कल्याणसुंदरमजी ने सारे विवाद को समाप्त कर दिया।

ऐसी तनावपूर्ण परिस्थिति में ही कल्कि और रुक्मिणी का विवाह संपन्न हुआ। दोनों के नाम—कृष्ण और रुक्मिणी—परस्पर मेल खाते देखकर लोग विशेष खुश हुए। विवाह के समय कल्कि पच्चीस वर्ष की उम्र के थे। शुभ लग्न के समय कल्कि रिवाज के अनुसार रेशम की धोती पहनने को तैयार नहीं हुए। वे मोटी खद्दर की ही धोती पहनकर बैठ गए। इसलिए वे गाँव के लोगों के बीच 'खद्दर दूल्हा' के नाम से मशहूर हो गए।

विवाह के बाद एक वर्ष तक रुक्मिणीजी मायके में ही ठहरी हुई थीं। उसके बाद उनके माता-पिता ने उन्हें ससुराल पुत्तमंगलम गाँव में पहुँचा दिया। कल्कि चेन्नै में मांबलम इलाक़े में एक मकान तय करके अपनी पत्नी को लिवा लाने के लिए पुत्तमंगलम गए। विवाह के अवसर पर रुक्मिणी के माता-पिता ने उनके लिए चौदह सावरिन (112 ग्राम) सोने का हार बनवाया था, लेकिन गौने के समय वह अचानक ग़ायब हो गया।

रुक्मिणीजी के ससुरालवालों (कल्कि के भाई आदि) के मन में कई संदेह उठे—क्या सचमुच कोई नया हार बना, अगर बना तो क्या सचमुच वह ग़ायब हो गया

---

1. *पोन्नियिन् पुदलवर*, पृ. 150-151.

था; बनने पर भी रुक्मिणी के माँ-बाप उसको छिपाकर उसके गुम हो जाने का नाटक कर रहे हैं क्या? दोनों परिवारों के बीच मनमुटाव पैदा हो गया।

फिर क्या हुआ? रुक्मिणीजी के ही शब्दों में सुनिए :

"कल्किजी ने सबके सामने मुझे बुलाकर पूछा, 'क्या तुम्हारे लिए कोई नया हार सचमुच बनवाया?" मैंने कहा, "जी हाँ, सचमुच नया हार बना था।" तब उन्होंने दूसरा सवाल किया, "क्या वह सचमुच ग़ायब हो गया?" मैंने कहा, "जी हाँ।"

"तब उन्होंने सबकी ओर उन्मुख होकर ज़ोर से कहा, "यह जो कहती है, उस पर मैं पूरा-पूरा विश्वास करता हूँ। आगे इस मामले के संबंध में कोई ज़बान न खोले।"

"हम गाँव छोड़कर मद्रास पहुँच गए। तभी ख़बर मिली कि हार का पता लग गया।"[1]

नारीत्व का सम्मान करने में, नारी को उचित आदर देने में, कल्कि केवल बातों के सूरमा नहीं थे, बल्कि कर दिखानेवाले वीर थे। उनकी कथनी और करनी के बीच कोई अंतर नहीं था। वे बाहर-भीतर एक समान थे। उन्होंने जीवन भर नारी की उन्नति और सफलता के लिए अपनी आवाज़ बुलंद की। उपर्युक्त घटना से स्पष्ट होता है कि 25-26 साल की उम्र के समय से ही कल्कि नारी के अधिकारों के समर्थक बने हुए थे।

पुस्तक प्रकाशन

कल्कि ने 1927 में *सत्य सोधनै* (सत्य की परख) और *शारदैयिन् तंत्रम* (शारदा की तरकीब) नामक अपनी दो पुस्तकों का प्रकाशन किया। *सत्य सोधनै* गाँधीजी की आत्मकथा का अनुवाद है। *शारदैयिन मंत्रम* आठ कहानियों का संकलन है। यह आत्मकथा और ये कहानियाँ पहले *नवशक्ति* पत्रिका में प्रकाशित हुईं। इन पुस्तकों के प्रकाशन के समय कल्कि केवल अट्ठाईस वर्ष के थे।

आश्रम-जीवन

कल्याणसुंदर मुदलियार की *नवशक्ति* पत्रिका से त्यागपत्र देने के बाद कल्कि को सर्वाधिक प्रसिद्ध *आनंद विकटन* पत्रिका में सौ रुपए के वेतन पर ऊँची नौकरी मिलनेवाली थी, लेकिन जब राजाजी ने उनको कांग्रेस के काम के लिए बुलाया, तब उनका निमंत्रण स्वीकार करके कल्कि सेलम ज़िले के तिरुचेंगोडु गाँव पहुँच गए। वहाँ गाँधीजी के नाम पर राजाजी एक आश्रम चला रहे थे। उसमें कल्कि भी शामिल हो

---

1. 'मेरे पतिदेव' (साक्षात्कार), *सावि* पत्रिका, 20 अगस्त 1998 का अंक, पृ. 4-5.

गए। वहाँ वे अपनी धर्मपत्नी के साथ ताड़पत्रों से बनी एक झोंपड़ी में सादा जीवन सानंद बिताने लगे। पहले वे पचास रुपए के वेतन पर आश्रम का हिसाब-किताब देखने का काम करते थे। कुछ महीनों के बाद वह काम किसी और को सौंपकर राजाजी के सहयोगी रूप में *विमोचनम* पत्रिका में काम करने लगे।

विमोचनम पत्रिका के संपादक राजाजी थे। उसके सहायक संपादक बने। इस पत्रिका का उद्देश्य शराबबंदी का प्रचार था। यह अगस्त 1929 से निकलने लगी। उसमें शराब की बुराइयों को स्पष्ट करते हुए कल्कि ने 'बैंकर विनायक राव' शीर्षक एक नाटक लिखा। इसी विषय पर उनकी छह कहानियाँ भी इस पत्रिका में निकलीं। उनके शीर्षक हैं—1. देय्ययानै (देवयानी), 2. अरसूर गाँव पंचायत्तु पंचायत, 3. चिन्नतंबियुम् तिरुडरकळुम (चिन्नतंबि नामक आदमी और चोर), 4. गोविन्दनुम वरीपप्पनुम (गोविन्द और वीरप्पन), 5. गवर्नर वंडि (गाड़ी), 6. विदूषकन् चिन्नुमुदलि (चिन्नुमुदलि नामक विदूषक)।

उच्चादर्शों को लेकर शुरू होनेवाली पत्रिकाओं की जो गति होती है, वही *विमोचनम* पत्रिका की भी हुई। अर्थात्, दस अंकों के बाद पत्रिका ने अंतिम साँस ले ली। फिर भी कल्कि ने 'बैंकर विनायक राव' नाटक की भूमिका में लिखा है कि तिरुचेंगोडु में गाँधी आश्रम में जो तीन साल उन्होंने बिताए, वे ही उनके जीवन में सबसे सुखपूर्ण और तृप्तिदायक दिन थे।

पुत्र-पुत्री का जन्म

आनंद विकटन पत्रिका में उपसंपादक की नौकरी करने के लिए 1931 में कल्कि चेन्नै आकर बस गए। उनको 1933 में पिता बनने का सौभाग्य मिला। रुक्मिणीजी ने 8 अप्रैल 1933 के दिन एक सुंदर बच्ची को जन्म दिया। राजाजी ने सुझाव दिया कि कल्कि के तनाव को दूर करके आनंद देनेवाली इस बच्ची का नाम 'आनंदी' रखा जाए।

मांबलम (चेन्नै) में कल्कि ने निजी मकान बनवा लिया। उसमें बसने के कुछ समय बाद कल्कि दूसरी बार पिता बने। रुक्मिणी ने 20 अगस्त 1935 को एक पुत्र को जन्म दिया। उस वक़्त बाबू राजेन्द्र प्रसादजी चेन्नै पधारे हुए थे। इस घटना से संबंध जोड़कर कल्कि ने बेटे का नाम राजेन्द्रन रखा। शायद बाद में उन्होंने सोचा होगा कि बेटे को राजाजी का नाम (राजगोपाल) देना चाहिए था। इसलिए पुत्र के यज्ञोपवीत धारण के समय उसको राजगोपाल शर्मा नाम भी दिया। (लेकिन राजेन्द्रन नाम से ही कल्कि के पुत्र आज भी जाने जाते हैं। वे कल्कि परिवार की पत्रिकाओं के मुद्रक एवं प्रकाशक हैं।)

कई वर्ष बाद जब आनंदी माँ बनी, तब उसकी बच्ची (कल्कि की पोती) का नामकरण भी राजाजी ने ही किया। उस समय वे दिल्ली में थे। यह शुभ समाचार

मिलने पर उन्हों जो बधाई-पत्र भेजा, उसमें यह संदेश था कि आनंदी और गौरी को मेरे आशीर्वाद। मतलब, उन्होंने बच्ची के लिए परोक्ष रूप में अपनी पसंद का नाम इस तरह सुझा दिया। कल्कि ने इसे बड़े गौरव की बात मानकर अपनी पोती को उस महापुरुष का दिया नाम ही रखा। वे गौरी नाम के साथ 'कण्मणि' (आँखों की पुतली) शब्द जोड़कर पोती को पुकारते थे। राजाजी और कल्कि के बीच जो घनिष्ठ स्नेह था, उसको नामकरण की ये घटनाएँ सिद्ध करती हैं। (श्रीमती गौरी रामनारायण आजकल एक प्रसिद्ध पत्रकार और अंग्रेज़ी निबंध लेखिका हैं।)

'कल्कि' उपनाम क्यों?

लोकोपकारी नामक पत्रिका के संपादक सु. नेल्लैयप्पर ने 1928 जुलाई में एक दिन कल्कि को *आनंद विकटन* पत्रिका के संपादक एस.एस. वासन के घर ले जाकर परिचय करा दिया। वासनजी (1904-1965) जेमिनी स्टुडियो के मालिक और कई मशहूर फ़िल्मों के निर्माता थे। *आनंद विकटन* पत्रिका आज भी ख़ूब चल रही है।

वासनजी से परिचित होने का फल यह हुआ कि अब तक अगस्तियर और तमिष़ तेनी उपनाम से *नवशक्ति* में लेख लिखनेवाले कृष्णमूर्ति ने पहली बार 'कल्कि' उपनाम धारण करके एक हास्य-प्रधान लेख लिखकर *आनंद विकटन* को भेजा। उस लेख ने उनको प्रसिद्धि की उच्च सीढ़ी पर पहुँचा दिया। साथ-साथ 'कल्कि' उपनाम भी सर्वत्र फैल गया।

जब कल्कि ने तीन अक्षरवाला यह संक्षिप्त उपनाम तय कर लिया, तब उन्होंने नहीं सोचा होगा कि आगे चलकर यह उपनाम इतना प्रसिद्ध हो जाएगा कि लोग उनके असली नाम को भूल जाएँगे। इतना ही नहीं, उन्होंने इसकी कल्पना तक न की होगी कि तेरह वर्ष बाद वे एक निजी पत्रिका शुरू करेंगे, जिसका नाम भी *कल्कि* होगा। यह पत्रिका आजकल उनके पुत्र श्री राजेन्द्रन की देखरेख में चल रही है। राजेन्द्रनजी की पुत्री श्रीमती सीता रवि पत्रिका की संपादक हैं।

चूँकि कल्कि ने अपने उपनाम का रहस्य प्रकट नहीं किया, लोग तरह-तरह से मनमाने ढंग से, इंस उपनाम की व्याख्या करते आ रहे थे। पाठकगण आपस में पूछ लेते थे कि इस उपनाम का अर्थ क्या है और इसका चयन क्यों किया गया। यह सब देखकर कल्कि ने अपने इस उपनाम का अर्थ बताने की सोची। मगर कब? यह उपनाम धारण करने के बाईस वर्ष बाद, 1950 में श्रीलंका में यात्रा के दौरान, उन्होंने अपने उपनाम के रहस्य को उद्घाटित किया।

> "मैंने 'एट्टिक्कु पोट्टि' शीर्षक लेख में यह विचार प्रकट किया था कि हमें पुराने और जर्जर रीति-रिवाजों तथा अर्थहीन आदतों और तौर-तरीक़ों की तिलांजलि दे देनी चाहिए। यह सच है कि हर एक तरुण लेखक यही सोचकर

लिखना प्रारंभ करता है कि अब तक के बीते युगों की विचारधारा से हटकर वह एक नवीन विचारधारा पर आधारित एक नए युग की सृष्टि करनेवाला है। मैंने भी उन दिनों एक नए युग की सृष्टि करनेवाले बहादुर लेखक के रूप में अपने को देखा था। आनेवाले नए युग को सूचित करने वाला विष्णु का दसवाँ अवतार 'कल्कि अवतार' कहा जाता है। इसके अनुकरण पर मैंने भी नए विचारों को अभिव्यक्त करके, नई दिशा में पाठकों का मन मोड़कर, एक नए युग को स्थापित करने के विचार से 'कल्कि' उपनाम रख लिया। इसके पीछे और कोई कारण बिलकुल नहीं है।"[1]

स्पष्ट है कि भगवान विष्णु के कल्कि अवतार की भावना से प्रभावित और प्रेरित होकर ही कृष्णमूर्तिजी ने यह उपनाम चुन लिया।

'कल्कि' उपनाम से प्रकाशित 'एटटिक्कु पोट्टि' शीर्षक लेख के धूमधाम के साथ स्वागत होने के बाद भी कल्कि ने कुछ अन्य उपनाम भी अपनाकर *आनंद विकटन* पत्रिका में कहानियाँ, लेख और संपादकीय लिखे। उनमें कुछ हैं—तमिष़ मगन् (तमिष़ का पुत्र), कर्नाटकम (परंपरावादी), रा. कि. (रा. कृष्णमूर्ति), तमिष़ तुंबि (भ्रमर) और ओरु ब्राह्मण इलैञजन् (एक ब्राह्मण युवक)।

द्वितीय बार कारावास

गाँधीजी ने अप्रैल 1930 में नमक सत्याग्रह की घोषणा की। इस सत्याग्रह के ज़ोरदार प्रचार के लिए कल्कि ने सदाशिवमजी की सहायता लेकर पैसे-दो पैसे की चार क्रांतिकारी विचारों की पुस्तिकाएँ हज़ारों की संख्या में छपवाकर गुप्त रूप से वितरित कर दी। उन रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

सुतंतिर पोर (स्वतंत्रता संग्राम), *महात्माविन् सिरैटवासम* (गाँधीजी का जेल जीवन), *महात्मा चरित्रम्* (गाँधीजी की जीवनकथा) और *सुयराज्यम एन* (स्वराज्य क्यों)।

कल्कि ने कुछ देशभक्तों को इकट्ठा करके धरना भी दिया। जगह-जगह जाकर आज़ादी के पक्ष में भाषण दिए। फलतः वे क़ैद कर लिए गए। उनको सितंबर 1930 में दूसरी बार जेल जाना पड़ा था। इस बार छह महीने कारावास का दंड मिला। कल्कि के प्रयत्नों की प्रशंसा करते हुए नामक्कल शहर के देशभक्त कवि रामलिंगम पिळ्ळै कहते हैं—

"नमक सत्याग्रह के प्रचार कार्य के लिए (राजधानी के) गाँधी आश्रम के स्वयंसेवकों ने महान सेवाएँ की थीं। श्री रा. कृष्णमूर्ति उन स्वयंसेवकों में प्रथम स्थान में रखे जाने योग्य हैं। इस आंदोलन में सेलम ज़िले के सत्याग्रही ही

---

1. *पोन्नियिन पुदल्वर*, पृ. 4

अधिकाधिक संख्या में जेल भरने को निकल पड़े। इस उपलब्धि का अधिकांश श्रेय कल्कि के परिश्रम को ही देना चाहिए।"[1]

जब कल्कि गाँधी आश्रम में काम करते थे, तब स्वतंत्र लेखन-कार्य भी जारी रखते थे। फ़ुरसत के समय *आनंद विकटन* पत्रिका को लेख, कहानियाँ तथा संपादकीय लिख भेजते थे। कारवास में प्राप्त अपने अनुभवों को भी संस्मरण के रूप में लिख डाला।

आनंद विकटन में नौकरी

आनंद विकटन पत्रिका के मालिक एस.एस. वासन 1931 के अंत में तिरुचेंगोडु गाँव आकर राजाजी से मिले। वे राजाजी की अनुमति मिलने पर कल्कि को अपनी पत्रिका में संपादक का पद देना चाहते थे। राजाजी सहमत हो गए। राजाजी की अनुमति प्राप्त करके कल्कि गाँधी आश्रम को छोड़कर निकले। आश्रम-निवासियों ने राजाजी के नेतृत्त्व में जमा होकर कल्कि और रुक्मिणीजी को आशीर्वाद सहित विदा कर दिया। उस समय रुक्मिणीजी का पाँचवाँ महीना चल रहा था। इसलिए उनको मायके छोड़कर कल्कि चेन्नै आ गए।

आनंद विकटन पत्रिका के उपसंपादक (वास्तव में संपादक) के रूप में 1931 के अंत में कल्कि नियुक्त हुए। वहाँ पहले ही तुमिलन, देवन (महादेवन), सावि (सा. विश्वनाथन) आदि प्रतिभाशाली लेखक संपादकीय विभाग में थे। उन सबका सहयोग प्राप्त कर और अपनी सारी शक्ति लगाकर कल्कि योजनाबद्ध रूप से पत्रिका के विकास कार्य में तल्लीन हो गए। पत्रिका के *आनंद विकटन* (आनंद देनेवाला विदूषक) नाम को सार्थक बनाने के लिए कल्कि उसमें प्रकाशित सारी सामग्री में हास्य का पुट देते थे, चाहे वह मुखपृष्ठ का चित्र हो या संपादकीय। कहानियाँ हो या लेख, समीक्षाएँ हों या चुटकुले।

आधुनिक तमिष़ कवि भारतीदासन (1891-1964) का कहना है कि तमिष़ भाषा से सुब्रह्मण्य भारती की उन्नति हुई और भारती से तमिष़ भाषा का विकास हुआ। इस उक्ति का अनुकरण करके कहें तो *विकटन* पत्रिका से कल्कि के जीवन में तरक़्की हुई और कल्कि की मेहनत से *विकटन* की बिक्री बढ़ी।

विकटन से त्यागपत्र

सन् 1940 का अंतिम दिन। वह दिन एक तरह से कल्कि के जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिन साबित हुआ। *आनंद विकटन* पत्रिका के उपसंपादक के रूप में कल्कि के लिए अचानक वह आख़िरी दिन हो गया।

---

1. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 250.

उस समय व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन शुरू हो चुका था। इसके समर्थन में कल्कि ने *विकटन* में संपादकीय लिखे। पत्रिका के मालिक वासनजी ने अपना असंतोष प्रकट किया। वे कई उद्योगों से संबंधित थे और सरकार से विरोध मोल लेना नहीं चाहते थे।

पहले भी दो बार सत्याग्रह करके जेल जाने के अनुभव के कारण कल्कि व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन में भी भाग लेना चाहते थे। उन्होंने इसके लिए अनुमति की प्रार्थना करते हुए गाँधीजी को पत्र लिखा। गाँधीजी का अनुमति पत्र ठीक दिसंबर 31 को कल्कि के घर के पते पर आ पहुँचा।

कल्कि ने तुरंत कार्यालय में जाकर जितने दिन की सज़ा की संभावना थी, उतने समय की छुट्टी के लिए अर्ज़ी दी। वे पत्रिका में रहते हुए सत्याग्रह में भाग लेना चाहते थे। वासनजी की सहमत नहीं हुए। वासनजी आंदोलन में भाग लेने निमित्त कल्कि को छुट्टी देना नहीं चाहते थे।

आंदोलन के समर्थन में कोई सामग्री अपनी पत्रिका में प्रकाशित होने देना भी वे नहीं चाहते थे। इसलिए वासन और कल्कि के बीच वाद-विवाद हुआ। दोनों में मतैक्य न होने से 1941 के नव वर्ष के दिन कल्कि *विकटन* कार्यालय नहीं गए। घर में बैठकर अपना त्यागपत्र भिजवा दिया।

कल्कि ने दस साल अथक परिश्रम करके *विकटन* पत्रिका का बहुमुखी विकास कर दिया था। बावजूद इसके, पत्रिका के मालिक के साथ दस मिनट के वाद-विवाद में वे 'भूतपूर्व' उपसंपादक हो गए! कहाँ दस साल, कहाँ दस मिनट? लेखकगण अपने लेखन की स्वतंत्रता में किसी का दख़ल देना पसंद नहीं करते। कल्कि इसके अपवाद नहीं थे। उन्होंने स्वयं लिखा है–

> "जब कभी मेरे सुनने में आया कि अमुक लेखक अमुक पत्रिका से दूसरी पत्रिका में चला गया या अमुक लेखक ने अपनी निजी पत्रिका शुरू कर दी, तब मुझे थोड़ा भी आश्चर्य नहीं होता था। लेखक लोग अजीब क़िस्म के शख़्स होते हैं। वे कहीं एक जगह टिक नहीं पाते। अधिकांश लेखक अपने दिल में यही चाहते हैं कि वे अपनी इच्छा से जो कुछ लिखना चाहें, उसे किसी नियंत्रण के बिना वे लिख सकें।"[1]

तीसरी बार कारावास

सन् 1941 जनवरी 21 तारीख़ को कल्कि ने मायवरम शहर में व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। वे क़ैद हुए और उनको तीन महीने के सश्रम कारावास का दंड दिया गया। उनको तिरुच्चि जेल में भेज दिया गया, जहाँ राजाजी भी सज़ा भुगत रहे थे।

---

1. *बैंकर विनायक राव*, भूमिका, पृ. 10.

कल्कि ने अपने तीनों कारावासों में प्राप्त हुए अनुभवों का वर्णन *मुन्रु मादम् कडुम् कावल्* नामक पुस्तक में विस्तार से किया है।

निजी पत्रिका का शुभारंभ

अप्रैल महीने में जेल से छूटकर कल्कि परिवार सहित चेन्नै लौटे। अपने आत्मीय मित्र सदाशिवमजी के सहयोग से वे एक निजी पत्रिका चलाने की योजनाएँ बनाने लगे। चूँकि 'कल्कि' नाम का जादू तमिलनाडु भर में फैल चुका था, उसी को पत्रिका के नाम के रूप में रखा गया। *कल्कि* पत्रिका का प्रथम अंक 1 अगस्त 1941 को प्रकाशित हो गया है। यह पत्रिका अब भी चल रही है और उसमें हमेशा उच्च स्तर की सामग्री ही जगह पाती है।

कहा जाता है कि जीवन में एक दरवाज़ा बंद हो जाए, तो कोई दूसरा दरवाज़ा अपने-आप खुल पड़ता है। यह कथन कल्कि के संदर्भ में सच निकला। कल्कि और वासनजी के बीच में मतभेद का परिणाम एक ओर बहिर्गमन के रूप में हुआ, तो कल्कि और सदाशिवमजी का आपसी सहयोग का परिणाम एक शुभागमन के रूप में निकला।

कल्कि पत्रिका लेखक कल्कि की बहुमुखी क्षमताओं और उनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं की अभिव्यक्ति के लिए सशक्त माध्यम बनी। कल्कि जीवनी लेखक सुंदाजी कहते हैं—"उनकी निजी पत्रिका उनके निजी व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करने वाली पत्रिका सिद्ध हुई।"[1]

कल्कि के तीन प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास यानी *पार्तिबन् कनवु* (पार्थिबन का सपना), *शिवकामियिन शपथम* (शिवकामी की शपथ) और *पोन्नियन सेल्वन्* (कावेरी तट प्रदेश का सुपुत्र युवराज) *कल्कि* पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए। कल्कि का प्रसिद्ध राजनीतिक उपन्यास *अलै ओसै* भी *कल्कि* पत्रिका में धारावाहिक रूप में निकला। कल्कि ने खुद कहा है कि उनकी रचनाओं में *अलै ओसै* (लहरों की आवाज़) ही सर्वश्रेष्ठ है और वही कालजयी बनेगी।

कल्कि उपन्यासकार मात्र नहीं थे। वे समयोचित सुंदर लेख भी लिखते थे। विशेष रूप से, उन्होंने तमिलनाडु में होनेवाले संगीत के कार्यक्रमों में तेलुगु गीतों के बजाय तमिष़ गीतों को ही प्राथमिकता देकर गाने पर ज़ोर डालकर अनेक विस्तृत लेख लिखे। हमारी शिक्षा पद्धति की कमियों पर विचारोत्तेजक लेख और चित्रपटों पर समीक्षात्मक लेख भी लिखे हैं।

कल्कि पत्रिका के आरंभ काल में कल्कि कहानियाँ ही ज़्यादा लिखते थे। बाद में धारावाहिक उपन्यास लिखने की ओर उन्मुख हुए। पत्रिका के मुखपृष्ठ पर उन

---

1. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 804.

महापुरुषों के चित्र छपवाए, जो अपने-अपने क्षेत्र में महान कार्य करके अपनी छाप छोड़कर गए थे। अंदर कल्कि द्वारा उनकी परिचयात्मक टिप्पणी लिखी जाती थी। महापुरुषों या देश के नेताओं के दिवंगत होने पर कल्कि ने उनको श्रद्धांजलि अर्पित करके संक्षिप्त लेख प्रस्तुत किए। संपादकीय लिखना तो उनकी ज़िम्मेदारी थी ही। बाकी पृष्ठों में अन्य लेखकों की सामग्री प्रकाशित होती थी।

चित्रपट के लिए कथाएँ

कल्कि ने चित्रपट का रूप देने की इच्छा से कभी-कभी कुछ लंबी कहानियाँ लिखीं, लेकिन उनके आधार पर चित्रपट बनाने के लिए अनुकूल परिस्थिति नहीं मिली। फलतः उन्होंने 'कल्वनिन् कादलि' (डाकू की प्रियतमा) शीर्षक कहानी को धारावाहिक उपन्यास का रूप देकर 1937 में *आनंद विकटन* में प्रकाशित किया।

इसी तरह 1939 में कल्कि ने अपनी पत्रिका में 'त्याग भूमि' शीर्षक लंबी कहानी को उपन्यास के रूप में प्रकाशित किया। उस समय उसका चित्रपट भी बन रहा था। उसके लिए खींचे गए पात्रों व घटनाओं के चित्र को पत्रिका में हर क़िस्त के साथ छपवाने का नवीन प्रयोग किया। यह चित्रपट ज़्यादा सफल नहीं हुआ। उसमें देशभक्ति की बातें होने से ब्रिटिश सरकार ने उसके प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दिया।

शिवकामियिन् शपथम उपन्यास 1944 में *कल्कि* पत्रिका में धारावाहिक रूप में निकला। कल्कि ने चित्रपट बनाने की इच्छा से इसको लिखा था, लेकिन इसके लिए मौक़ा नहीं मिला। वह नृत्य-नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया। रेडियो नाटक के रूप में उसका प्रसारण तिरुच्चि आकाशवाणी केन्द्र के द्वारा किया गया।

कल्कि का यात्रा साहित्य

कल्कि ने 1938 मई महीने में श्रीलंका की यात्रा की। फिर 1950 अगस्त में वे दूसरी बार वहाँ गए। इन यात्राओं में प्राप्त अनुभवों को लेकर उन्होंने दो संस्मरणात्मक पुस्तकें लिखीं जिनके नाम हैं—*इलंकैयिल् ओरुवारम* (श्रीलंका में एक सप्ताह) और *इलंकै प्रयाणम* (श्रीलंका की यात्रा)। इनमें दूसरी पुस्तक में बारह लेख हैं। कल्कि ने लेखों को आकर्षक शीर्षक दिए हैं। जैसे—'विभीषण कहाँ?' मतलब, चिरंजीव या अमर माने जाने से विभीषणजी अब भी श्रीलंका में कहीं रहते आ रहे होंगे।

श्रीलंका में तमिष़ भाषा भी ख़ूब प्रचलित बोलचाल की तमिष़ शैली की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

> "शुरू-शुरू में याप्पाणम (श्रीलंका) के निवासियों को तमिष़ में ख़ास शैली में बात करते सुनकर हमें कुछ अजीब-सा लगेगा। कुछ काल तक उसे लगातार सुनकर उसके अभ्यस्त हो जाने पर हम उसकी मिठास में तन्मय हो जाएँगे।

संगीत की भाषा में कहें, तो वे भावों पर ख़ूब ज़ोर देकर तमिष़ बोलते हैं। मगर हम तमिलनाडु के लोग खड़-खड़ करके इस प्रकार तमिष़ में बोलते हैं, जैसे—श्राद्ध में मंत्र बोल रहे हों।"[1]

जब श्रीलंका की यात्रा से संबंधित आख़िरी लेख *आनंद विकटन* में निकला, उस समय कल्कि उस पत्रिका से त्यागपत्र दे चुके थे। इसलिए आख़िरी लेख के उपसंहार में वे लिखते हैं—"श्रीलंका माता और विकटन के पाठक, इन दोनों से हम एक साथ विदा ले रहे हैं। प्रिय पाठकगण, अलविदा!"[2]

श्रीलंका के अलावा कल्कि ने लेखक की हैसियत से महाबलिपुरम, तंजाऊर, मैसूर आदि इतिहास-प्रसिद्ध जगहों की यात्रा की। इस तरह अर्जित अनुभवों के आधार पर उन्होंने कई सुंदर यात्रापरक लेख लिखे। उनके शीर्षक हैः स्वप्न लोकम्, महेन्द्रजालपुरम, (महेन्द्रवर्मन द्वारा निर्मित जादू-सा शहर), कल् सोन्न कथै (कही प्रस्तर ने कहानी), वाष़्वुम् ताष़्वूम् (उत्थान और पतन), नम् तन्दैयर सेय्द विंदैकल (हमारे पूर्वजों का चमत्कारपूर्ण कार्य)।

अनुवाद-कार्य

कल्कि अनुवाद कार्य के महत्त्व को जानते थे। प्रसिद्ध अनुवादक रा. वीष़िनाथन के *कुल पेरुमै* (कुल-गौरव) नामक अनूदित उपन्यास की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"अनुवाद का कार्य एक महान कला है। उसको उपेक्षा की दृष्टि से मत देखो। उसे अपने में पूर्ण स्वतंत्र विधा मानकर काम में उतर जाओ। इससे तुम्हें बड़ी प्रसिद्धि मिल जाएगी। भिन्न-भिन्न लेखकों के मंतव्य को समझकर उनकी अलग-अलग शैली की विशेषताओं से परिचित होकर फिर इसके आधार पर तमिष़ में अनुवाद करने में जो समस्याएँ हैं, उन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अगर तुम इस कार्य में सफल हो जाओगे तो, जब तुम कोई मौलिक कृति लिखोगे, तब अन्य भाषा के ये लेखक तुम्हारे मानस की पृष्ठभूमि में खड़े होकर तुम्हारी मदद करेंगे। तुम्हारी निजी भाषा-शैली भी निखर उठेगी।"[3]

केवल उपदेश देकर कल्कि रुके नहीं। उन्होंने स्वयं दिलचस्पी लेकर अनुवाद कार्य कर दिखाया। गाँधीजी की आत्मकथा (*सत्य सोधनै* नाम से दो भागों में), लाला लाजपत राय की कृति *युव भारत* और स्वामी विवेकानंदकृत *हमारी मातृभूमि* के अनुवाद प्रस्तुत करके कल्कि ने अनुवाद कला में अपनी कुशलता ज़ाहिर कर दी। उनकी अनूदित कृतियाँ मूलनिष्ठ होती हैं और सरल-सहज तमिष़ शैली में हैं।

---

1. *इलंकै प्रयाणम*, पृ. 23.
2. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 818.
3. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 47.

गीतकार कल्कि

कल्कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे एक सफल कहानीकार, उपन्यासकार और निबंध-लेखक मात्र नहीं थे। उन्होंने अनेक सुरीले गीतों की भी रचना की। ये गीत *कल्कि* पत्रिका के दीवावली और गणतंत्र दिवस के विशेषांकों में प्रकाशित हुए। कुछ गीत 'मीरा' और 'त्यागभूमि' चित्रपटों में गाए गए। कुछ और गीत उनके उपन्यासों में जैसे—*कल्वनिन् कादलि, सोलैमलै इळवरसि* (सोलैमलै प्रदेश की राजकुमारी), मयिल्‌विषि मान् (मोर की-सी आँखोंवाली हरिणी-सी युवती), *शिवकामियिन् शपथम्, पोन्नियिन् सेल्वन्* आदि में बीच-बीच में जोड़ दिए गए। स्वतंत्र रूप से कुछ गीत एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी, डी. के. पट्टम्माल, एम. एल. वसंतकुमारी द्वारा गाए जाकर ग्रामोफ़ोन रेकार्ड पर दर्ज किए गए। इस तरह कल्कि द्वारा रचित 29 गीत *स्वर्गीय कल्कि शताब्दी स्मारिका* में इकट्ठे प्रकाशित किए गए हैं।

यद्यपि कल्कि के सभी गीत गेय और श्रुतिमधुर हैं, तथापि 1949 में बने 'मीरा' चित्रपट में एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी द्वारा अत्यंत अप्रतिम मीठी आवाज़ में गाया गया। 'काट्रिनिले वरुम गीतम' (हवा में तैरकर आता है वो गीत/आँखों को गीला बनाते उमड़ता है वो गीत) सर्वाधिक प्रसिद्ध हो गया।

शहद की, दूध की, मधुर फलों की मिठास-सा मीठा वह गीत सुननेवालों के शरीर और प्राणों को झंकृत कर देता है। उस चित्रपट के निकले कई दशकों के हो जाने पर भी उस गीत को आज भी जो सुनता है, वह झूम उठता है और उसके माधुर्य में तन्मय हो जाता है।

कल्कि के श्रद्धेय पुरुष-द्वय

कल्कि जिन दो महापुरुषों पर अगाध श्रद्धा रखते थे, उनमें एक हैं राजाजी। कल्कि ने उनकी जीवनी *नाट्टुक्कु ओरु नल्लवर* (देश का एक सज्जन पुरुष) शीर्षक देकर लिखी थी। वे जीवनभर राजाजी के प्रति अनन्य भक्ति भावना जैसी श्रद्धा रखते थे। एक प्रकार से वे राजाजी के अंगरक्षक जैसे उनकी सुख-सुविधा और ज़रूरतों पर हमेशा ध्यान रखते थे। उनके लिए जनक महाराज, महान आदि शब्दों का प्रयोग करके उनका बड़ा आदर करते थे। वे राजाजी के प्रति कृतज्ञ थे, क्योंकि उन्होंने राजाजी से ही राजनीति का गहरा ज्ञान प्राप्त किया। राजाजी के विचारों के समर्थन में लिखने के लिए *कल्कि* पत्रिका में जगह पर्याप्त न होने पर उन्होंने एक अलग और छोटा संस्करण भी (अलग विशेषांक जैसे) कुछ समय तक के लिए निकाला था। उसे लोग 'लघु कल्कि' कहते थे।

जब कांग्रेस के नेताओं के द्वारा दो बार राजाजी के विचारों का तीव्र विरोध हुआ, तब राजाजी के समर्थन में कल्कि ने अपनी लेखनी से शब्द-युद्ध चलाया। पहली

बार 1941-42 में जब राजाजी ने अगस्त क्रांति में हिंसात्मक घटनाओं का खंडन किया था और दूसरी बार 1944-46 में जब उन्होंने कहा कि पाकिस्तान की माँग को टाला नहीं जा सकता, तब कल्कि ने अपनी पत्रिका द्वारा उनके विचारों का प्रचार बुलंद आवाज़ में किया। राजाजी को कल्कि राजनीति में अपना एकमात्र मार्गदर्शक मानते थे।

कल्कि की श्रद्धा के पात्र दूसरे महापुरुष टी. के. चिदंबरनाथ मुदलियार (1881-1954) थे। वे सद्साहित्य के प्रशंसक थे। इसलिए लोग उनको 'रसिकमणि' पुकारते थे। कल्कि को उनका परिचय 1932 में मिला। चिदंबरनाथजी झरनों से घिरे कुट्रालम का ऋषि कहकर उनका आदर करते थे। साहित्य के क्षेत्र में, विशेष रूप से काव्य में, उसमें भी महाकवि कंबन की रामायण के रसास्वादन् में चिदंबरनाथजी को ही कल्कि अपना मार्गदर्शक मानते थे। तमिऴ के एक प्राचीन ग्रंथ *पुरनानूरु* (घर के बाहर के जीवन से संबंधित 400 पद्य) में एक उक्ति है—"जिनको ढूँढ़कर तुम जाते हो, उनके प्रति श्रद्धा दिखाओ और जो तुम्हें ढूँढ़कर आता है, उसके प्रति स्नेह दिखाओ।" इसके अनुरूप ही राजाजी और चिदंबरनाथजी के प्रति कल्कि असीम श्रद्धा और आदर दिखाते थे। उसी प्रकार दोनों भी कल्कि को बहुत चाहते थे और उनसे बड़ा स्नेह रखते थे।

अर्थ-संग्रह और स्मारक मंडपों का निर्माण

निरंतर लेखन कार्य और पत्रिका चलाने की ज़िम्मेदारी का निर्वाह करते हुए कल्कि कई सार्वजनिक कार्यों में भी उत्साह से भाग लेते थे। उनके लगातार प्रयत्नों से महाकवि भारती के लिए एक मणिमंडप उनके जन्मस्थान एट्टयपुरम शहर में निर्मित हुआ। 12 अक्तूबर 1947 को राजाजी द्वारा यह मंडप खोला गया। उस समय वे पश्चिम बंगाल के राज्यपाल थे।

महात्मा गाँधीजी को कल्कि नरों में नारायण मानते थे और उनके लिए चेन्नै में एक स्मृति-चिह्न की स्थापना करना चाहते थे। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने लोगों से दान के रूप में एक बड़ी राशि इकट्ठी कर ली। सन् 1952 में राजाजी तमिलनाडु के मुख्य मंत्री थे। उनके सुझाव पर गाँधीजी के लिए एक स्मारक मंडप बनवाने की योजना में कल्कि उत्साह के साथ प्रवृत्त हुए। अक्टूबर 1953 में इस मंडप का लोकार्पण हुआ।

इसी प्रकार समय-समय पर कल्कि लोगों से धन इकट्ठा कर अच्छे कार्यों के लिए उसका उपयोग करते थे। जैसे—

- ✧ नामक्कल (शहर के) कवि रामलिंगम पिळ्ळै के लिए आर्थिक सहायता। इन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और देशभक्ति एवं गाँधीवाद से ओतप्रोत गीत लिखे।

- ✧ परलि सु. नेल्लैयप्पर के लिए आर्थिक सहायता। ये महाकवि भारती के घनिष्ठ मित्रों में एक थे। इन्होंने ही कल्कि का परिचय वासनजी से कराया। इससे तमिष़ पत्रकारिता में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए।
- ✧ सन् 1948 में नवीन तमिष़ साहित्यकार पुदुमैपित्तन की मृत्यु पर ग़रीबी में फँसे उसके परिवार को आर्थिक सहायता पहुँचाई, यद्यपि पुदुमैपित्तन...वर्षों से लगातार कल्कि के विरुद्ध ही लिखते और बोलते आ रहे थे।
- ✧ व. उ. चिदंबरम पिळ्ळै (1872-1936) के लिए स्मारक का निर्माण। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर वे जेल गए, जहाँ उनको कोल्हू खींचने का दंड दिया गया। ब्रिटिश सरकार के विरोध के बावजूद वे 1906 में प्रथम भारतीय जहाज़रानी कंपनी खोलकर तूत्तुकुडि बंदरगाह और श्रीलंका के बीच जहाज़ चलाते थे।
- ✧ तिरु. वि. कल्याणसुंदर मुदलियार की स्मृति में एक सभा-भवन। इनकी *नवशक्ति* पत्रिका में कल्कि ने लेखक की हैसियत से सबसे पहले नौकरी की थी।
- ✧ तिरुच्चि के नेशनल कॉलेज हाईस्कूल में इमारतें बनवाने का काम। इस स्कूल में ही कल्कि ने पढ़ाई की थी।

कल्कि का सदाशय, हाथ में लिए कार्य को पूरा करने की क्षमता, लोगों पर उनके किसी भी निवेदन का प्रभाव आदि के बारे में सोमले नामक लेखक कहते हैं—"जब कभी किसी सार्वजनिक कार्य के लिए धन वसूल करना आवश्यक हो जाता, तो कल्कि अपनी पत्रिका में लेख लिखकर पाठकों से अर्ज़ करते थे कि वे जितना ज़्यादा दे सकें, उतना ज़रूर दें, तब पत्रिका के कार्यालय में पानी जैसे रुपए बरसने लगते थे। पूर्व निश्चित राशि मिल जाने पर कल्कि वसूल करना बंद कर देते थे। फिर कोई दूसरा सार्वजनिक काम हाथ में लेने पर कल्कि लोगों से फिर एक बार रुपए भेजने के लिए अर्ज़ करते थे। बार-बार यही होता था, जिससे पता चलता है कि लोगों को उनकी कार्यकुशलता पर असीम विश्वास था।"[1]

इतने से ही कल्कि संतुष्ट नहीं हुए। वे तमिष़ लेखकों की भलाई के लिए स्थायी रूप से कुछ करना चाहते थे। सन् 1950 में वे तमिष़ लेखक संघ के अध्यक्ष बने। इस हैसियत से उन्होंने लेखक संघ का संविधान बनाना, संघ का पंजीकरण कराना, मासिक साहित्यिक गोष्ठी चलाना, वृद्ध लेखकों को आर्थिक सहायता देना, कॉपीराइट के मामले में लेखकों को अधिकार दिलवाना आदि बहुत-सा काम लेखकों के हित में किया।

---

1. *पल्सुवै कट्टुरैकळ्* (फुटकर निबंध), पृ. 72.

कल्कि तमिष़ विकास समिति के दो सचिवों में एक थे। इस हैसियत से तमिष़ में विश्वकोश तैयार करने और प्रकाशित करने के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया। उपयुक्त लेखकों और विद्वानों को चुनने और भाषा को सर्वत्र सरल बनाए रखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।

यमराज की निष्ठुरता

कल्कि का सधा हुआ हाथ तरह-तरह की रचनाओं की सृष्टि करते हुए आगे बढ़ता गया। उनके पास और भी लिखने को बहुत कुछ बाक़ी था, लेकिन नियति का हाथ कल्कि के जीवन को दूसरे ढंग से लिखने के लिए आगे बढ़ा। अपनी पत्रिका के 5 सितंबर 1954 के अंक से कल्कि *अमरतारा* शीर्षक अपना नया धारावाहिक उपन्यास प्रकाशित करने लगे। जब वे छब्बीसवें अध्याय तक पहुँच गए, तब 5 दिसंबर 1954 को उनका देहावसान हो गया। उस समय वे केवल 55 वर्ष की उम्र के थे। यमराज उस उपन्यास के पूरे होने तक के लिए भी नहीं रुका। मज़ेदार बात यह है कि निधन का दिन तमिष़ भाषी जनता के जीवन में एक अविस्मरणीय दुखद दिन के रूप में अंकित हो गया।

2

कहानीकार कल्कि

"तमिष़ कहानियों में गहराई के आने के कारण *मणिकोडि* पत्रिका बनी, तो उनमें विशालता के आने का कारण कल्कि बने। तमिष़ पाठकों के जगत में कहानियों के विस्तार से फैलने के लिए जो लेखक कारणकर्त्ता हुए, उनमें कल्कि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।"

—रा. दंडायुधम[1]

आकाशवाणी के चेन्नै केन्द्र से कार्यक्रमों का प्रसारण 16 जुलाई 1938 से प्रारंभ हुआ। उसके सातवें दिन कल्कि ने 'कहानी' शीर्षक वार्ता में एक लघुकथा सुनाई। उसके द्वारा वे यह स्पष्ट करना चाहते थे कि कहानी को कितना संक्षिप्त होना चाहिए।

इस वार्ता में कल्कि पहले एक घटना का वर्णन आठ-दस पंक्तियों में करते हैं। फिर उसी को एक वाक्य में संक्षिप्त करके दिखाते हैं। वह इस प्रकार हैं—

"एक दिन कांचीपुरम के अभयवेदांत तात्तैयंगार स्वामीजी ने अपने नौकर कुप्पन को बुलाकर और अपना शुभ मुँह खोलकर आदेश दिया—"अरे कुप्पा, तू तुरंत श्रीपेरूंपुदूर के तिरुवेंकटाचारी स्वामीजी के यहाँ दौड़कर जा और यह सूचित कर दे कि कुंभकोणम के तिरुनारायण अय्यंगार स्वामीजी पवित्र मंदिर में पूजा और दर्शन के लिए गए थे। तब पुनीत काई पर पुनीत पैर फिसलकर गिर गए।"

कुप्पन ने कहा, "ठीक है स्वामीजी!"

तात्तैयंगार के मन में संदेह उठा कि उनकी वैष्णव भाषा-शैली को गँवार कुप्पन समझ सका या नहीं। इसलिए पूछा, "बोलो, तू जाकर क्या कहेगा?"

कुप्पन, "क्या मैं इतना भी नहीं समझ सकता? मैं जाकर कहूँगा कि कुंशकोणम का ब्राह्मण पोखर में गिर पड़ा।"

1. *तर्काल तमिष़ इलक्कियम्* (आज का तमिष़ साहित्य), पृ. 51.

"एक ही बात—मगर कहने का ढंग अलग-अलग। अय्यंगार स्वामीजी ने एक ढंग से कहा और कुप्पन ने अपने ढंग से, लेकिन कुप्पन ने जिस ढंग से कहा, वही कहानी की कला के लक्षणों में गिने जाने योग्य है। लंबी-चौड़ी भूमिका न बाँधकर और शब्दाडंबर के बिना कुप्पन ने पाँच-छह लफ़्ज़ों में ही विषय को ज़ोरदार ढंग से कह डाला। कहने का लहजा भी अत्यंत स्पष्ट है।"[1]

कल्कि ने अपनी रेडियो-वार्ता में जो कहानी सुनाई वह असल में पुरानी थी, लेकिन उसी को आधार बनाकर आधुनिक कहानी के स्वरूप और उसकी तकनीक को समझाने के लिए कल्कि ने जो ढंग अपनाया था, वह अनूठा था। इस उदाहरण में कल्कि की कल्पना की विलक्षणता भी झलक उठती है।

कहानी के क्षेत्र में कल्कि का आगमन

आधुनिक युग के आरंभ काल में व . वे. सु. अय्यर, महाकवि भारती और मादवैया उल्लेखनीय कहानीकार हुए। फिर प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका *मणिकोडि* के युग में पुदुमैपित्तन, कु. प. राजगोपालन, न. पिच्चमूर्ति, पी. एस. रामैया आदि लोकप्रिय कहानीकार हुए। आरंभकालीन लेखकों का अनुगमन करते हुए और 'मणिकोडि' समूह के लेखकों का समकालीन होकर कल्कि तमिष़ कहानी-क्षेत्र में प्रवेश करके सक्रिय हुए।

कल्कि की सबसे पुरानी कहानी के रूप में अब तक जिस कहानी का पता लग सका है, वह 1924 में *नवशक्ति* में प्रकाशित हुई थी। यह सच है कि शीघ्र ही एक उपन्यासकार के रूप में कल्कि ज़्यादा प्रसिद्ध हुए, लेकिन एक कहानी लेखक के रूप में ही पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका जीवन शुरू हुआ था। यही नहीं, एकसाथ प्रकाशित उनकी प्रथम दो पुस्तकों में एक कहानी-संग्रह ही है।

कल्कि की जीवनी के लेखक सुंदाजी कहते हैं—"एक पुस्तक-लेखक की हैसियत को कल्कि 1927 में प्राप्त हुए । जब वे 28 वर्ष की आयु के थे। उस वर्ष उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं। एक है—*सत्य शोधनै* भाग 1 (गाँधीजी की आत्मकथा) और दूसरी है—*शरदैयिन् तंत्रम* (शारदा की तरक़ीब) नामक कहानी संकलन। गाँधीजी की आत्मकथा और कल्कि की मौलिक कहानियाँ पहले *नवशक्ति* में किस्तों में प्रकाशित हुई थीं। चूँकि *सत्य शोधनै* एक अनुवाद है, *शारदैयिन् तंत्रम* ही कल्कि की प्रथम सृजनात्मक कृति है।"[2]

शारदैयिन् तंत्रम में आठ कहानियाँ हैं। ये सब *नवशक्ति* में प्रकाशित हुई थीं, जब कल्कि उस पत्रिका में अक्टूबर 1923 से जुलाई 1928 तक सहायक संपादक के

---

1. *पोन्नियिन् पुदल्वर,* पृ. 465.
2. वही, पृ. 189.

रूप में काम करते थे। उन दिनों वे अपने वास्तविक नाम (रा. कृष्णमूर्ति) से कहानियाँ लिखा करते थे। *नवशक्ति* को छोड़ने के बाद अगस्त 1928 में *आनंद विकटन* पत्रिका को प्रथम लेख भेजते समय ही उन्होंने 'कल्कि' उपनाम अपनाया।

सन् 1931 दिसंबर में कल्कि *आनंद विकटन* के उपसंपादक बने। उस पत्रिका में 1940 के अंत तक काम करते रहे। *नवशक्ति* से निकलने के बाद और *आनंद विकटन* में शामिल होने के पहले जो अंतराल था, उस समय (अगस्त 1928-दिसंबर 1931) राजाजी के आश्रम में कल्कि सदस्य बनकर काम करते थे। जब राजाजी ने मद्य-निषेध के प्रचार के लिए *विमोचनम* नामक पत्रिका शुरू कर दी, तब कल्कि उसके संपादन में राजाजी की सहायता करने लगे। मद्य-निषेध को विषय-वस्तु बनाकर उन्होंने उस पत्रिका में कुछ कहानियाँ लिखीं।

कल्कि ने 1 जनवरी 1941 को *आनंद विकटन* पत्रिका की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उसी वर्ष अगस्त में उन्होंने *कल्कि* नाम से एक निजी पत्रिका शुरू कर दी। कुछ समय तक उसमें वे कहानियाँ लिखते रहे। फिर उन्होंने दीपावली, पोंगल आदि अवसरों के विशेषांकों में ही कहानी लिखने का नियम-सा बना लिया। लगातार लंबे-लंबे उपन्यासों को धारावाहिक रूप में प्रस्तुत करने में ही वे अपना सारा ध्यान केन्द्रित करने लगे। इस प्रकार *नवशक्ति, विमोचनम्, आनंद विकटन* और *कल्कि*, इन चार पत्रिकाओं से होकर उन्होंने कहानी लेखन में एक लंबी दूरी तय कर ली।

जब हम उपर्युक्त पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर कल्कि की कहानियों का अध्ययन करें, तभी हम सही ढंग से और पूर्ण रूप से उनका महत्त्व समझ सकते हैं और मूल्यांकन भी कर सकते हैं।

पे. को सुंदरराजन और सो. शिवपार्दसुंदरम ने संयुक्त रूप से *तमिऴ् सिरुकथैः वरलारुम् वलर्चियुम्* (तमिष़ कहानी : उद्भव और विकास) नामक पुस्तक लिखी। उसमें व्यक्त निम्नलिखित विचार ग़ौर करने योग्य है—

> "कल्कि की कहानियों में तीन चरणों में रखकर देखना चाहिए। सन् 1923 से लेकर 1931 तक जब वे *नवशक्ति* और *विमोचनम* में सहायक संपादक थे, उस समय लिखी कहानियाँ प्रथम चरण की हैं। फिर 1931 से 1940 तक *आनंद विकटन* में कार्यकारी संपादक के रूप में लिखी कहानियाँ दूसरे चरण की हैं। सन् 1941 से अपने निधन तक अपनी पत्रिका *कल्कि* में लिखी कहानियाँ तीसरे चरण की हैं। इन तीनों चरणों की कहानियों का अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि देश के जीवन में औद्योगिक विकास के कारण उत्पन्न परिवर्तन, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति, पाठकों की संख्या में वृद्धि आदि उन कहानियों के अच्छे या औसत स्तर की होने के कारण बनते हैं।" (पृ. 64)

अगर हम लगभग 25 वर्ष की अवधि नियत कर, ऊपर उल्लिखित चार पत्रिकाओं में भिन्न समय पर प्रकाशित कल्कि की किन्हीं पाँच कहानियों को पास-पास रखकर तुलना करें, तो मालूम हो जाएगा कि स्तर के संबंध में ऊपर के उद्धरण में दिया हुआ विचार सही है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पाँच कहानियों को तुलना के लिए ले सकते हैं–

1. गवर्नर विजयम	(राज्यपाल का आगमन)	*नवशक्ति*	4 दिसंबर 1925
2. विदूषकन् कण्णीरुम	(विदूषक चिन्नुमुदलि)	*विमोचन*	बैशाख 1930
3. कडितमुम् कण्णीरुम	(ख़त और आँसू)	*आनंद विकटन*	13 जून 1937
4. पुलि राजा	(बाघ राजा)	*कल्कि*	1 अगस्त 1941
5. वीडु तेडुम् पडलम्	(मकान ढूँढ़ने का क़िस्सा)	*कल्कि*	दीपावली अंक 1950

इन कहानियों की तुलना के आधार पर यह सिद्ध होता है कि कल्कि ने परिस्थिति को ध्यान में रखकर ही भिन्न-भिन्न साहित्यिक स्तर तक पहुँचने वाली कहानियाँ लिखीं।

मूल्यांकन में मतभेद

जब कल्कि की कहानियों पत्रिकाओं में निकल रही थीं, तब हज़ारों की संख्या में पाठकों द्वारा उनका ख़ूब स्वागत हुआ और बड़ी चाव से वे पढ़ी गईं। उस भावपूर्ण स्वागत की जानकारी टी. के. चिदंबरनाथ मुदलियार की निम्नलिखित पंक्तियों से पर्याप्त रूप में मिलती है–

"*आनंद विकटन* पत्रिका में कल्कि की बहुत-सी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं; अब भी निकल रही हैं। वे तमिष़ भाषी लोगों का मन जितना हर लेती हैं, उसे बताने की ज़रूरत नहीं है। स्त्रियाँ 'दोसे' के लिए एक हाथ से चक्की में आटा पीसते हुए और दूसरे हाथ से *आनंद विकटन* खोलकर पढ़ते हुए नज़र आ रही हैं। बच्चे के पालने को झुलाने के लिए एक हाथ और कल्कि की कहानी पढ़ने के लिए दूसरा हाथ, इस प्रकार हाथों को काम बाँटनेवाली स्त्रियाँ नज़र आ रही हैं। अध्यापकगण बहुधा शिकायत करते हैं कि स्कूल के बच्चों को पाठ्य-पुस्तक के नीचे *विकटन* को छिपाकर पढ़ने की आदत हो गई है। पंसारी की दुकान पर, मिठाइयों की दुकान पर, पेड़ों के नीचे जहाँ कच्चे आम के टुकड़े बेचे जाते हैं, वहाँ लोगों को कल्कि की कहानियाँ पढ़ते हुए देख सकते हैं। रेलगाड़ी के प्रथम या द्वितीय दर्जे में मज़े से चुरुट या सिगरेट पीते हुए यात्रियों को कल्कि की कहानियों को पढ़ते देख सकते हैं। ये कहानियाँ तमिलनाडु के कोने-कोने तक पहुँचकर हँसाने, अचरज में डालने या दिल को पिघला देने का काम

करती आ रही हैं। इस प्रकार कहानियाँ पढ़नेवालों की संख्या चालीस हज़ार, फिर पचास हज़ार, इस तरह बढ़ने लगी।"[1]

हज़ारों तमिष़भाषी पाठक हर सप्ताह *आनंद विकटन* का बेसब्री से इंतज़ार करते थे। *विकटन* की प्रति हाथ में लगते ही लोग कल्कि की कहानी को मन लगाकर पढ़ते और खुश हो जाते थे। फिर भी कल्कि की कहानियों का मूल्यांकन करनेवाले समीक्षकों के दो परस्पर विरोधी दल हुए। एक तरफ़ के समालोचकों ने विरोधात्मक दृष्टिकोण अपनाकर और कठोर शब्दों का प्रयोग कर कल्कि की कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। दूसरी तरफ़ ऐसे समीक्षक भी बहुत हुए, जो कल्कि की कहानियों की बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करते थे। दोनों पक्षों की दलीलों को यहाँ संक्षेप में देखना समीचीन होगा।

प्रो. एम. वेदसहाय कुमार ने अपनी पुस्तक *तमिष़ चिरुकरै वरलारु* (तमिष़ कहानी का इतिहास-भाग 1) में अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है–

"कल्कि की कहानियों में कहानी कला का कोई भी लक्षण देखा नहीं जा सकता। किसी भी कहानी में उसके विविध तत्त्वों के बीच जो सामंजस्य होना चाहिए, उसकी उन्होंने कभी परवाह नहीं की। पाठकों को खुश कर देने के लिए आवश्यक सामग्री का समावेश करने के तरकीबों पर ही वे सारा ध्यान देते थे।" (पृ. 59)

वेदसहाय कुमारजी की दृष्टि में कल्कि ऐसे कहानीकार हैं, जिन्होंने सद्विचारों के प्रचार का मुखौटा पहनकर मामूली क़िस्म की और सस्ते मनोरंजन की कहानियाँ ही लिखी हैं। वे दिखावटीपन से भरी रहती हैं और सिर्फ़ बिक्री बढ़ाने के लिए बनियापन से प्रेरित हुई हैं।

डॉ. गो. केशवन अपनी पुस्तक *तमिष़ सिरुकथैकलिल् उरुवम* (तमिष़ की कहानियों में रूप-विधान) में उपर्युक्त विचार का समर्थन-सा करते हुए इस प्रकार लिखते हैं–"साहित्य के इतिहास की पुस्तकों के अनुसार कल्कि की कहानियों ने पाठकों को पूर्ण रूप से वशीभूत कर लिया, लेकिन सच्चाई इसकी उलटी है। वास्तविकता यह है कि पाठकों ने ही कल्कि की कहानियों के रूप-विधान पर हावी होकर उसको निर्णीत कर दिया।" (पृ. 42)

केशवनजी घुमा-फिराकर यही कहना चाहते हैं कि कल्कि की कहानियों में कलात्मक रूप का अभाव है। वे केवल औसत पाठकों की रुचि के अनुसार कहानियाँ लिखते गए।

एक अन्य आलोचक च. सोन्दिलनाथन ने *तमिष़ सिरुकथैकल् ओरु मदिप्पीडु* (तमिष़ कहानियाँ : एक मूल्यांकन) नामक अपनी पुस्तक में इस प्रकार टिप्पणी लिखी है–कल्कि जितनी ज़िम्मेदारी और जितना ध्यान देकर उपन्यास लिखते थे, उतनी गंभीरता

1. *कणैयापियिन् कनवु* (कणयापि नामक गाँव में स्वप्न), पृ. viii-ix (भूमिका)

के साथ उन्होंने कहानियाँ नहीं लिखी थीं। कल्कि प्रथम श्रेणी के कहानी लेखक नहीं थे। उनका स्थान द्वितीय श्रेणी के लेखकों के बीच में हैं। (पृ. 67-68)

अन्य कई समीक्षक जैसे चि. सु. चेल्लप्पा, चिदंबर रघुनाथन, क. कैलाशपति, एन. आर. दासन आदि ने भी कल्कि की कहानियों के संदर्भ में प्रतिकूल विचार ही अपनी-अपनी पुस्तक में प्रकट किया है।

दूसरी तरफ़ ऐसे समीक्षक भी हुए, जिन्होंने कल्कि का पक्ष लिया और अपनी पुस्तकों में उनकी कहानियों का प्रशंसात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया। इन समीक्षकों में प्रोफ़सर का शिवतंबि, डॉ. रा. दंडायुधम, डॉ. मा. रामलिंगम उल्लेखनीय हैं।

शिवतंबिजी अपनी पुस्तक *तमिष चिरुकदैदिन् तोट्रमुम् वलर्चियुम* (तमिष़ कहानी का उद्‌भव और विकास) में लिखते हैं—"कल्कि ने इस ढंग से भाषा का प्रयोग किया, जिससे सभी स्तर के तमिष़भाषी लोग उसे समझ सकें और वे ऐसा महसूस कर सकें कि तमिष़ भाषा केवल पंडितों की नहीं, बल्कि सभी तमिष़ लोगों की आम संपत्ति है।" (पृ. 29)

शिवतंबिजी के अनुसार कल्कि के कारण ही तमिष़ में कहानी को बढ़ावा मिला। वे लिखते हैं—"कल्कि की कहानियों के द्वारा कहानी-विधा तमिष़-भूमि में घुल-मिलकर उसका अंग बन गई। इस बुनियाद पर ही तमिष़ कहानी साहित्य की इमारत खड़ी हुई और उसके ऊपर उन्नति का कलश रखा जा सका। कल्कि आधार बने और *मणिकोडि* पत्रिका के लेखक कहानी के विकास के कारणकर्त्ता हुए।" (पृ. 37)

मा. रामलिंगमजी ने डॉक्टर उपाधि के लिए प्रस्तुत अपने शोध-प्रबंध *विडुतलैक्कु मुन् पुदिय तमिष़ सिरुकैकिल* (स्वतंत्रता पूर्व नवीन तमिष़ कहानियाँ) में कल्कि की कहानियों के अंग बनकर हमारे मन को वशीभूत कर देनेवाले छह तत्त्वों की गिनती की है, जो इस प्रकार हैं—1. घटनाओं को तेज़ी से आगे ले जाने में दक्षता, 2. जीवंत पात्र, 3. रोचक वार्तालाप, 4. आश्चर्यजनक अंत, 5. आनंददायक कल्पना और 6. प्रभावपूर्ण भाषा-शैली।

"उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर रामलिंगमजी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यद्यपि किसी वाद से जुड़े हुए एकपक्षीय समीक्षकों ने कल्कि की कहानियों में कई त्रुटियों का पता लगाया है, तो भी तमिष़ कहानियों के इतिहास के मार्ग पर कल्कि के पदचिह्न स्पष्ट और गहरे अंकित हो गए हैं। यह उनके लिए विशेष गौरव की बात है।" (पृ. 222)

डॉ. रा. दंडायुधम अपनी पुस्तक *तमिष़ सिरुकथै मुन्नोडिकल* (तमिष़ कहानी के अग्रगामी) में लिखते हैं—"घटनाओं के गूँथने का ढंग, स्वाभाविक वार्तालाप, जीवंत पात्र, रोचक कथावस्तु, हास्य का हल्का पुट—ये पाँच तत्त्व केवल कल्कि की कहानियों

की सफलता के कारण नहीं बने, बल्कि समूचे तमिष़ कहानी-साहित्य के विकास और प्रसार के भी कारण बन गए।" (पृ. 269)

डॉ. दंडायुधमजी अपनी एक अन्य पुस्तक *भारती मुदल् सुजाता वरै* (भारती से सुजाता तक) में एक कहानीकार के रूप में कल्कि में दृष्टिगत होनेवाली दो विशेषताओं की ओर संकेत करते हैं। वे हैं—कथा कहने का रोचक ढंग और हास्य का समावेश। इनको वे कल्कि की जन्मजात विशेषताएँ मानते हैं।

कल्कि की कहानियों के साहित्यिक स्तर के बारे में प्रतिकूल विचार रखनेवाले समीक्षकों ने भी इस तथ्य को कभी अस्वीकार नहीं किया, बल्कि वे इस बात से सहमत ही होते हैं—कि तमिलनाडु में कहानियों को बड़े चाव से पढ़ने के लिए आतुर होनेवाले पाठकों की भीड़ के सृष्टिकर्त्ता कल्कि ही हैं। वे यह भी मानते हैं कि कल्कि की कहानियाँ चुंबक के समान तमिष़भाषी लोगों को अपनी ओर खींच लेती थीं।

मीनाक्षी मुरुगरत्नम ने कल्कि की कहानियों को अपने शोध का विषय बनाकर डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की है। इसलिए उनके निष्कर्षों से परिचित हो जाना समीचीन होगा। *कल्कियिन् सिरुकथै कलै* (कल्कि की कहानी कला) नामक अपनी पुस्तक में उपसंहार के रूप में अपने शोध का सार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं—

> "तमिष़ कहानी-साहित्य के आरंभ काल में जो लेखक सफल कहानीकार हुए, उनमें कल्कि भी एक थे। इसका कारण यह है कि उनकी रचनाओं में त्रुटियाँ कम और श्लाघनीय तत्त्व ज़्यादा हैं। जो त्रुटियाँ हैं, वे भी नज़रअंदाज़ करने योग्य हैं।
>
> टी. एस. इलियट ने शेक्सपियर के किसी नाटक के बारे में जो कहा है वह कल्कि की रचनाओं पर भी लागू होता है। शेक्सपियर के नाटकों के समान ही कल्कि की रचनाओं में भी केवल समय काटने के लिए पढ़नेवालों को रोचक ढंग से बुनी हुई कथावस्तु मिलेगी। ज़रा सोच-समझकर पढ़नेवाले सूक्ष्म चरित्र-चित्रण और उलझन भरी कथावस्तु से प्रभावित होंगे। गहरा अर्थ ढूँढ़नेवालों के लिए जीवन के अमूल्य सत्य उनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं।" (पृ. 252)

सारांश यह है कि कल्कि का मूल्यांकन करते समय निन्दा-स्तुति से परे रहकर और निष्पक्ष रुख़ अपनाकर निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए। संत तिरुवल्लुवर कहते हैं कि व्यक्ति या वस्तु की विशेषताओं को पहचानकर तथा कमियों पर भी ध्यान देकर, फिर दोनों में जिसकी मात्रा ज़्यादा है, उसके अनुसार मूल्यांकन स्थिर करना चाहिए। इस मापदंड को आधार बनाकर, जो कल्कि की कहानियों का अध्ययन करते हैं, वे डॉ. मीनाक्षीजी के विचार से सहमत होंगे कि उनमें विशेषताएँ ही अधिक हैं और त्रुटियाँ अल्प और नगण्य हैं।

कल्कि की कहानियाँ

कल्कि की कहानियों की संख्या 119 हैं। उनमें कुछ संक्षिप्त हैं, तो कुछ लघु उपन्यास जैसे लंबी। ये कहानियाँ बारह संग्रहों के रूप में प्रकाशित हुई हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. *शारदैयिन् तंत्रम*, 2. *कणैयाषि़यिन् कनवु*, 3. *वीणै भवानी* (वीणावादिनी भवानी), 4. *बैंकर विनायक राव*, 5. *आमर वाषृवु* (शाश्वत जीवन), 6. *ओट्रै रोजा* (अकेला गुलाब), 7. *मयिलै कालै* (अच्छी नसल का बैल), 8. *मयिलविषि मान्*, 9. *माडतेवन् सुनै* (माडतेवन् पोखरा), 10. *तिरुवषुंदूर शिवकोषुन्दु* (तिरुवषुंदूर गाँव का शिवकोषुंदु नाम व्यक्ति), 11. *अबलैयिन् कण्णीर* (अबला के आँसू) और 12. *ज़मींदार मकन्* (ज़मींदार का बेटा)।

कल्कि के इन संग्रहों की कहानियों में प्रकट होनेवाली कलात्मक निपुणता पर यहाँ विचार करेंगे।

कहानी सुनाने की क्षमता

अंग्रेज़ी के लेखक सामरसेट माम ने अपनी एक भूमिका में लिखा है कि हमारे सामने जो घटनाएँ घटती हैं, उनसे होते हुए कोई कथावस्तु ढूँढ़ निकालने के लिए असाधारण प्रतिभा चाहिए। यह सभी को नहीं, किसी-किसी को ही प्राप्त होती है। उसको आसानी से प्राप्त करना भी संभव नहीं है। इसलिए उसे प्रकृति प्रदत्त वरदान कह सकते हैं।

पहले, मानव-जीवन पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालकर, उसमें छिपे हुए कहानी-तत्त्व का पता लगाना चाहिए। फिर उसे कहानी का रूप देकर रोचक ढंग से सुनाना चाहिए। ये विशेष गुण कल्कि को स्वभाव से ही प्राप्त थे। वे उनके स्वभाव के अंग बने हुए थे। रोचकता के साथ कहानी सुनाने की सामर्थ्य कल्कि को प्राप्त होने के कारण उनकी कहानियाँ सफल हुईं और पाठकों के दिल में अमिट स्थान प्राप्त कर सकीं।

उदाहरण के लिए कल्कि के पात्रों में एक पात्र कंदप्प पिळ्ळै को ले सकते हैं। ये अय्यमूपेट्टै गाँव के निवासी हैं और पेशे से तविल बजाने वाले हैं, जो मृदंग से बड़ा बाजा है और कठोर आवाज़वाला होता है। कंदप्प पिळ्ळै तीन कहानियों में आते हैं। वे हैं—'तिरुवषुंदूर शिवकोषुंदु', 'नाटककारी' (नटी), 'वीणै भवानी'। ये कहानियाँ इस ढंग से लिखी गई हैं, जैसे कंदप्प पिळ्ळै ही कल्कि को कहानी सुना रहे हैं। वे स्पष्ट और भावपूर्ण ढंग से कहानी सुनाने में चतुर हैं। वे ऐसा सुनाते थे, जैसे हरेक घटना अभी-अभी सामने घट रही हो।

उपर्युक्त कहानियों में 'वीणै भवानी' विशेष महत्त्व रखती है और पाठकों के हृदय को आकर्षित करने में प्रथम स्थान पाती है। कहानी की नायिका भवानी, पूंतोट्टम (गाँव) भवानी और वीणै भवानी नाम से भी पहचानी जाती थी। उसका चेहरा अत्यंत आकर्षक था। उसका दिल पवित्र था। देवदासी कुल (मंदिर में नाचने के लिए अर्पित गणिकाओं का एक वर्ग) में जन्म लेने पर भी भवानी ने एक ही पुरुष को अपना पति मानकर आख़िरी दम तक उसके साथ जीवन बिताया। उसी के लिए अपनी जान भी दे डाली। ऐसी उत्तम स्त्री थी वह।

भवानी का संगीत आध्यात्मिक कोटि का माना जाता था। उन दिनों बातें करते समय लोग 'बड़ी भारी भीड़' है, कहने के बदले 'पूंतोट्टम भवानी के संगीत कार्यक्रम के लिए इकट्ठी भीड़ जैसी है' कहकर आश्चर्य प्रकट करते थे। जब वह हाथ में वीणा लेकर गाने-बजाने लगती थी, तब ऐसा लगता था कि देवी सरस्वती ही भवानी का रूप लेकर आई हो और संगीत कला के प्रदर्शन के लिए ही उसकी सृष्टि हुई हो। इस विचार को गोपालसामी नामक पात्र द्वारा कल्कि इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

> "ब्रह्माजी ने भवानी की सृष्टि उस तरीके से नहीं की, जिस ढंग से उन्होंने अन्य लोगों की सृष्टि की है। राग कल्याण, राग मोहनम और राग सेंचुरुट्टि को मिलाकर ब्रह्मा ने भवानी की सृष्टि की है। चाहें तो आप जाकर उसकी बनावट खुद देखिए। इसलिए जब कभी उसका निधन होगा, तब उसका शरीर पिघलकर, द्रवीभूत होकर राग-रागिनियों के रूप में परिवर्तित हो जाएगा।"[1]

कहानी समाप्त होने पर भी और कहानी के अंत में भवानी की मृत्यु हो जाने पर भी पाठकों के मन से वीणै भवानी की याद कभी दूर नहीं होती। इतनी सफलता के साथ जीवंत और भावपूर्ण ढंग से कंदप्प पिळ्ळै के द्वारा कल्कि ने कहानी सुनवाई है।

कल्कि ने इस अध्याय के शुरू में उल्लिखित अपनी आकाशवाणी-वार्ता में कहानी की परिभाषा देते समय कहा था कि खींचतान न करके कम-से-कम शब्दों में विषय को स्पष्ट रूपसे प्रकट करना उसका मुख्य लक्षण है, लेकिन व्यवहार में वे खुद इस नियम का पालन नहीं कर सके। एक के बाद एक के क्रम से घटनाओं का विस्तार करके कहानियाँ लिखना उनकी आदत बन गई थी। विषय-वस्तु के अलावा भूमिका, उपसंहार और उपशीर्षकों का समावेश करके कई पृष्ठों में कहानियाँ कहने के वे आदी हो गए थे। उदाहरण के लिए—

'अमर वाष्वु' कहानी में भूमिका और उपसंहार के अतिरिक्त आठ उपशीर्षक भी मिलते हैं, जैसे रतलाम जंकशन, जयहिन्द, कर्नल कुमरप्पा, कादलै यात्रै (प्रेम की

---

1. *वीणै भवानी*, पृ. 14.

यात्रा), नेताजी विजयराम (सुभाषचंद्र बोस का आगमन), क्रातकन् उल्लम (बदमाश का दिल), विमानम् मरैन्दतु (हवाई जहाज़ गुम) और वेषम् कलैन्दतु (वेश भंग हुआ)।

'सुभद्रैयिन् सहोदरन' (सुभद्रा का भाई) कहानी में छह उपशीर्षकों के अंतर्गत कथावस्तु बाँट दी गई है।

कल्कि ने कुछ कहानियों को भागों या अध्यायों में विभाजित करके लिखने की शैली भी अपनाई है। 'रंगदुर्गम राजा' चार भागों में, 'अबलैयिन् कण्णीर' छह भागों में और 'ओट्रै रोजा' छह अध्यायों में विभक्त हैं। इनको लंबी कहानियाँ या लघु उपन्यास मानना उपयुक्त रहेगा।

लेकिन एक कहानी को कई उपशीर्षक देकर बाँटना, एक कहानी से कथावस्तु की कई शाखाएँ निकलना, कहानी की लंबाई पर ग़ौर किए बिना लिखते जाना आदि से कल्कि की कई कहानियों के स्वरूप को नुक़सान पहुँचा है। यह कल्कि के कथासाहित्य की एक कमी है। इस तथ्य से हम इनकार नहीं कर सकते।

हास्य का पुट

कल्कि की लेखन शैली में अभिन्न रूप से मिला हुआ दूसरा गुण है—हास्य का पुट। कवच-कुंडल के साथ जन्म लेनेवाले कर्ण के समान, कल्कि जब संसार में आए, तब अपने साथ हास्य की प्रवृत्ति को भी ले आए होंगे। उनके ख़ून में हास्य इतना गहरा घुलमिल गया था। उनकी रचनाओं को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि हास्य का समावेश किए बिना वे कुछ भी नहीं लिख पाते थे। चाहे कथावस्तु को विकसित कर रहे हों या पृष्ठभूमि के वर्णन में लगे हुए हों, कल्कि अपनी भाषा में ज़रूर हास्य का हलका पुट देते थे।

कल्कि द्वारा कहानी में हास्य के समावेश के पीछे एक व्यावहारिक कारण भी है। वर्तमान समाज की हालत और मनुष्य स्वभाव की विचित्रता का व्यंग्य के साथ परिहास करने के लिए तथा सरल ढंग से अपने संदेश को पाठकों के दिल पर दृढ़ता से स्थापित करने के लिए कल्कि ने हास्य रस की मदद ली।

कल्कि की निम्नलिखित कहानियाँ हास्य रस के लिए विशेषरूप से प्रसिद्ध हैं; 'वीडु तेडुम पडलम' (मकान ढूँढ़ने का क़िस्सा), 'चिरंजीवि कदै पोलिस विरुन्दु' (पुलिस की दावत), 'सिनिमा कदै', 'एंगलू ऊर संगीत पोट्टि' (हमारे शहर में संगीत की प्रतियोगिता), 'पुलि राजा', 'गवर्नर विजयम गुंडुविन् संन्यासम' (गुंडु उपनामवाले का संन्यास), 'वस्तादु वेणु' (वेणु नामक पहलवान), 'इदु एन्न सोर्गम' (यह कैसा स्वर्ग है), 'कैलाशम अय्यर गाबरा' (कैलाशम अय्यर नामक व्यक्ति का आतंक)। उदाहरण के लिए देखिए कि किराए के लिए मकान ढूँढ़ने से संबंधित कहानी में कल्कि का हास्य कैसे चमक उठता है—

"द्वापर युग के बर्नार्ड शॉ नाम से प्रसिद्ध प्रोफ़सर वेदव्यासजी ने साढ़े तीन करोड़ शब्दों को लेकर अठारह पुराणों का प्रणयन किया था न? उन अठारह पुराणों को नैमिशारण्य वन के सूत पौराणिकजी ने सौनकादि ऋषि-मुनियों को सुनाया था। उन्हें पूरा-पूरा सुनने के बाद ऋषि विलाप करने लगे, 'हाय रे! अठारह पुराणों के पश्चात् कोई उन्नीसवाँ पुराण तो नहीं रह गया। अब हम कौन-सी कथा सुनते हुए नींद की गोद में जाएँगे?

"तब सूत पौराणिकजी ने तसल्ली दी, 'प्यारे मुनियो, चिन्ता मत करो। एक उन्नीसवाँ पुराण भी है, जिसे कलिपुराण कहते हैं। उसे रोज़ थोड़ा-थोड़ा सुनकर आराम से सो जाइयो।' ऐसा कहकर उन्होंने कमंडल से एक आउंस पानी का आचमन करके उन्नीसवाँ पुराण, यानि कलिपुराण, सुनाना शुरू कर दिया।

"इतने महत्त्वपूर्ण कलिपुराण में क्रम से पहले देश वर्णन, फिर नगर वर्णन और उसके बाद आवास वर्णन आता है। आवास वर्णन को मकान ढूँढ़ने का वृत्तांत भी कह सकते हैं। हाँ, मकान ढूँढ़ने में जो-जो तकलीफ़ें पैदा होती हैं, उन्हें सुनाए बिना भी मैं (कल्कि) रह सकता हूँ, लेकिन भगवद्गीता के माध्यम से प्रोफ़सर कृष्ण भगवान ने तीन बार चिल्लाकर कहा है—'अपना कर्त्तव्य ही करो, कर्त्तव्य को अवश्य करो। इसलिए मकान ढूँढ़ने की तकलीफ़ों का वर्णन करने का अपना कर्त्तव्य अब आरंभ करता हूँ।"[1]

इस तरह हास्य की पृष्ठभूमि में 'वीडु तेडुम् पडलम' कहानी शुरू होती है। वेदव्यास महर्षि को प्रोफ़सर और द्वापर युग का बर्नार्ड शॉ कहना; सुनते हुए ऊँघने के लिए कोई पुराण बाक़ी न होने की आशंका से मुनियों का प्रलाप; आचमन करने के लिए कमंडल से एक आउंस पानी निकालना; काल्पनिक कलि पुराण में कलि के कष्ट के रूप में मकान ढूँढ़ने के प्रयत्न का वर्णन; भगवान कृष्ण को प्रोफ़सर कहना; कर्त्तव्य करने पर ज़ोर डालकर उनका तीन बार चिल्लाना इत्यादि बातें कहकर कल्कि हमें पंक्ति पर पंक्ति हँसा देते हैं।

इसके आगे कहानी के नायक श्री घटोत्कच रायर (रायर लोग मद्वाचार्य के अनुयायी और कन्नड भाषी होते हैं) चेन्नै शहर में मकान ढूँढ़ते हुए, जिन अड़चनों का सामना करते हैं, उनको कल्कि अनूठे और हास्यपूर्ण ढंग से सुनाते हैं। घटोत्कच रायर तिरुवल्लिकेणि इलाक़े में जिस मुहल्ले में लंबे अरसे से रहते आ रहे थे, उसका नाम है 'दिग अट्र विघ्न विनायकर कोविल वीथी' (दिशाहीन विघ्नेश्वर मंदिर मुहल्ला)। वे तेनांपेट्टै इलाक़े में जिस गली में नया मकान देखने जाते हैं, उसका नाम 'चेल्ला कासु चेट्टियार संदु' (खोटे सिक्केवाले सेठजी की गली)।

---

1. *माडतेवन सुनै*, पृ. 78-79.

वे मकान-मालिक से अपना परिचय इस प्रकार देने लगते हैं, "मैं एक बड़ा गृहस्थ हूँ। नौ बच्चों का बाप। कह नहीं सकता कि इनकी गिनती नहीं बढ़ेगी।" कल्कि अपनी ओर से जोड़ते हैं, "नौ बच्चों का बाप होकर रायरजी ने हिन्दू समूह की वृद्धि के लिए बड़ी सेवा की है।"

और एक जगह मकान ख़ाली है, लेकिन 'भूत-प्रेत निवास' नाम से वह बदनाम है। फिर भी उसको किराए पर लेने के लिए एक किराया-नियंत्रण अधिकारी आते हैं। उनका नाम पेय् आल्वार वायुडु है (पेय् आल्वार वैष्णव संत कवि थे, लेकिन पेय् का अर्थ पिशाच भी है)। रायरजी से तीन बच्चे ज़्यादा हैं, नायुडुजी के, मतलब नायुडुजी एक दर्ज़न बच्चों के बाप हैं।

इस प्रकार सारी कहानी हास्य की सुगंध से महक उठती है। बीच-बीच में कल्कि जीवन के छोटे-छोटे क़िस्से जोड़ते जाते हैं, जो सब्जी में धनिया जैसे कहानी के स्वाद को बढ़ा देते हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है :

> "मलयाल देश (केरल) का एक नंबूदिरि (ब्राह्मण) एक बार चेन्नै शहर में आया। घूम-फिरकर शहर देखने के बाद गाँव लौटा, तो वहाँ के लोगों से कहा, 'मद्रास में जितने अमीर होते हैं, उनमें सबसे बड़ा अमीर तो 'टू लेट' साहब ही हैं। जिस मुहल्ले में भी जाएँ, वहाँ आठ-दस घरों के फाटक पर 'टू लेट' बोर्ड ही लटके रहते हैं।"[1]

कल्कि के अनुसार हास्य का मतलब हँसना और हँसना मात्र नहीं है। उसके अंतर्गत चिन्तन के लिए भी सामग्री होनी चाहिए। मकान ढूँढ़ने से संबंधित कहानी में हास्य और चिन्तन अक्सर हाथ मिलाकर आगे बढ़ते हैं। इस कहानी में कल्कि ने पुराणों पर श्रद्धा, शकुनों और ज्योतिष की बातों पर विश्वास, भूत-प्रेतों के अस्तित्व को मानकर उनसे डरना आदि का खंडन हास्य द्वारा ऐसे सूक्ष्म ढंग से किया है, जैसे केले के फल में कोई सुई घुसेड़ दे।

बहुत कोशिश करके, इधर-उधर मारा-मारा फिरने के बाद घटोत्कच रायर भी उसी 'भूत निवास' को ख़ाली जानकर वहाँ आ जाते हैं, लेकिन वह मकान उनको नहीं मिलता। किराया-नियंत्रण अधिकारी अपने पद की धाक जमाकार कम किराए पर उस मकान को ले लेते हैं। फिर भी इससे घटोत्कच रायर नाराज़ नहीं होते। वे जो कहते हैं, उसे कल्कि के शब्दों में सुनिए—

> "रायर ने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया कि नए घर में वह अफ़सर सही सलामत रहा करें और भी बच्चे पैदा होकर उनका कुटुंब फूले-फले। तथास्तु।"[2]

1. *माडतेवन सुनै*, पृ. 78-80. अंग्रेज़ी से अनभिज्ञ इस ब्राह्मण ने 'टू लेट' को नाम पट्ट समझ लिया जबकि इसका अर्थ किराए के लिए' है।

2. *माडतेवन् सुनै*, पृ. 101

इस प्रकार आदि से अंत तक कथावस्तु, पात्र, देश-काल, भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से हास्य रस से भरपूर इस कहानी के द्वारा मकान ढूँढ़ने की मुसीबतों को कल्कि ने मज़ेदार ढंग से वर्णित किया है।

युग का चित्रांकन

जब कल्कि लेखन-क्षेत्र में आए, वह समय भारत के इतिहास में एक क्रांतिकारी युग था। समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति, कला, साहित्य, शिक्षा आदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण मोड़ उपस्थित हो रहे थे। गाँधीजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रेरित होकर आज़ादी की चाह, देशप्रेम, छुआछूत का उन्मूलन, मद्यनिषेध, स्त्री स्वातंत्र्य, विधवा-विवाह, मातृभाषा का प्रचार आदि कार्यक्रम जनता पर हावी होने लगे। इस वातावरण में लेखन-कार्य शुरू करनेवाले कल्कि द्वारा अपनी कहानियों में गाँधीजी के विचारों का समावेश करना स्वाभाविक ही था। इस तरह की दो-चार गाँधीवादी कहानियों को देखेंगे।

'एक पंथ दो काज' वाली उक्ति का पालन अपनी कहानियाँ में सफलतापूर्वक करने में कल्कि कुशल थे। एकसाथ बाल्य विवाह का विरोध और विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन करते हुए उन्होंने 'सुभद्रैयिन् सहोदरन' नामक एक कहानी लिखी है। उसमें एक जगह सुभद्रा के भाई राजगोपालन की मारफ़त कल्कि बोलते हैं—

> "हमारे समाज में हत्या की बराबरी करनेवाले दो भयंकर पाप कर्म प्रचलित हैं। एक है, वयस्क होने के पहले ही मजबूर करके लड़की का विवाह करा देना। दूसरा पाप यह है कि बहुत कम उम्र में, बचपन में ही, जो लड़कियाँ अपने पति को खो देती हैं, उनको भी विधवा के रूप में सभी खुशियों से वंचित रहकर सारा जीवन थपेड़े खाते हुए बिताना पड़ता है, लेकिन मौखिक सहानुभूति से कोई फ़ायदा नहीं है। क्या तुम प्रतिज्ञा कर सकते हो कि तुम या तो जो कन्या वयस्क हो गई उसी से शादी करोगे या किसी बाल विधवा से ही शादी करोगे?"[1]

इन पंक्तियों से यह साबित होता है कि कल्कि को अपनी समकालीन पीढ़ी के युवकों से एक बात की अपेक्षा थी। वे चाहते थे कि युवक लोग केवल सुधार की बात करने में बहादुर न रहकर कही बात को कर दिखानेवाले असली वीर बन जाएँ।

इस कहानी में राजगोपालन का विवाह तय करते समय उसके पिता भारी रक़म दहेज के रूप में माँगने की योजना बनाते हैं। आरी की धार जैसे तीखे शब्दों से कल्कि उनकी निन्दा करते हैं। ये शब्द उनके प्रगतिशील मानसिक गठन को प्रकट कर देते हैं—

---

1. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 127-128.

"राजगोपालन के पिता अपने सुपुत्र की नीलामी-सी कर रहे थे। उसके दहेज की रक़म को 3000, 4000, इस प्रकार बढ़ाते जाते थे। वे सोचते थे कि नीलामी की बोली की राशि और भी बढ़ने लगेगी।"[1]

विधवा की समस्या को कल्कि ने 'केदारियिन् तायार' (केदारनाथ की माँ) शीर्षक कहानी में उठाया है। कहानी का नायक केदारी अपनी माँ के विधवा होने पर उसके साथ जो क्रूर व्यवहार किया गया, उसका स्मरण करके उत्तेजना में एक दोस्त से कहता है–

"भाई शंकर, कैसा बेकार शास्त्र है यह! जिस शख़्स ने पत्नी को अनाथ छोड़कर अठारह वर्ष तक फिर मुँह नहीं दिखाया और उसकी सुध नहीं ली, उसके मरने पर उसकी पत्नी को सिर मुँड़वा लेने की आज्ञा देनेवाला यह शास्त्र क्या कोई मानी रखता है? उस शास्त्र-ग्रंथ को लाओ, भाई। उसे आग में फेंकर भस्म कर डालेंगे।"[2]

केदारी तैश में आ यह घोषणा भी करता है कि तमिलनाडु के ब्राह्मण समूह में पति की मृत्यु पर पत्नी के लिए सिर मुँड़वाने की जो प्रथा है, उसका उन्मूलन करने के लिए वह एक बड़ा आंदोलन चलानेवाला है।[3]

स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता पर ज़ोर डालकर कल्कि ने 'कडितमुम् कण्णीरुम्' (ख़त और आँसू) नामक एक भावपूर्ण कहानी लिखी थी। उसकी नायिका अन्नपूर्णा पहले एक मामूली लड़की थी। बाल-विवाह के कारण नौ साल की उम्र में ही वह विधवा हो चुकी थी। इसलिए वह स्कूल जाकर पढ़ना-लिखना न सीख सकी। फलतः बाद में उसे प्राप्त प्रेम पत्र का आशय वह समझ न सकी। फिर वह धीरे-धीरे पढ़-लिखकर डिग्रियाँ लेती है। वह 'देवी विद्यालय' नामक संस्था की स्थापना करके बाल विधवाओं, पति द्वारा परित्यक्त नारियों और अनाथ स्त्रियों की सेवा करने लगती है। सहोदरी अन्नपूर्णा देवी नाम से प्रख्यात होकर वह समाज में आदरणीय स्थान प्राप्त कर लेती है।

'विष मंत्रम' (सर्प विष उतारने का मंत्र) नामक अपनी एक मार्मिक कहानी में कल्कि छुआछूत के अत्याचार के विरुद्ध कथावस्तु प्रस्तुत करके चेतावनी देते हैं कि उस प्रथा का अंत निकट आ गया है। इस कहानी के दो पात्रों में एक पोस्ट मास्टर नारायण अय्यर हैं, जो ऊँची (ब्राह्मण) जाति में जन्म लेने के कारण जाति भेद को उचित मानते हैं। दूसरा पात्र पोस्टल इन्स्पेक्टर पेद्दपेरुमाल हैं, जो ऊँची जाति के न होने के कारण हीनता की भावना से पीड़ित हैं। फिर दोनों जब परिस्थितिवश इस सत्य

---

1. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 100.
2. *कणैयापियिन् कनवु*, पृ. 38.
3. यह प्रथा अब सौ फ़ीसदी विदा ले चुकी है।

से परिचित हो जाते हैं कि चाहे पेशे की वजह से लोगों में कुछ भिन्नता आ जाए, मगर जन्म के आधार पर सबके सब लोग बराबर होते हैं। कहानी के अंत में दोनों पात्र कह उठते हैं, "आज ही मेरी आँखें खुलीं" और "हम समझ गए कि ईश्वर ने हम सभी को समान रूप से ही पैदा किया है।"[1] उनकी स्वीकारोक्ति पाठकों के मन को पिघला देती है। कहानी का आख़िरी वाक्य महाकवि भारती की एक प्रसिद्ध पंक्ति है, जिसका अर्थ है कि आज़ादी केवल देश की नहीं, बल्कि हरिजनों, तिरयों, पुलैयों आदि निम्न श्रेणी की पददलित जातियों को भी मिल जाए।

मद्य निषेध नीति के समर्थन में कल्कि ने राजाजी की *विमोचनम* पत्रिका में कई कहानियाँ लिखीं। उनमें याद रखने योग्य की कहानियाँ इस प्रकार हैं—'देय्ययानै', 'चिन्नतंबियुम् तिरुडर्कलुम्', 'गोविन्दनुम् वीरप्पनुम्', 'दंडनै यारुक्कु' (सज़ा किसको), 'विदूषकन् चिन्नुमुदलि' और 'गवर्नर वंडि'।

इनमें 'दंडनै यारुक्कु' शीर्षक कहानी ज़्यादा विचारोत्तेजक है। वह तीन पृष्ठों में समाप्त हो जाती है। इसका मुख्य पात्र है एक ग़रीब किसान। वह नशे में किसी की हत्या कर डालता है। अदालत में उसे फाँसी की सज़ा सुनाई जाती है। कल्कि पूछते हैं, "क्या यह सज़ा न्यायपूर्ण है? वास्तविक अपराधी तो वह निगोड़ी शराब है। इसलिए फाँसी की सजा शराब को मिलनी चाहिए थी।" कल्कि का यह तर्क हमें गहराई से सोचने के लिए बाध्य करता है।

राष्ट्रवाद और गाँधीवाद

महाकवि भारती का अमर उद्बोधन है,

"यह भारत देश महान है, प्राचीन है
और हम हैं इसकी संतान हैं..."

इस विचार को मन में रखकर कल्कि हमारे देश को और देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करनेवाले नेताओं को अपने प्राणों से अधिक मूल्यवान मानते थे और उनकी स्तुति करते थे।

कल्कि की रचनाओं को पढ़कर तमिष़भाषी लोग कल्कि के संबंध में निश्चित रूप से तीन बातें समझ गए—1. उनके मन में गाँधीजी के प्रति गहरी श्रद्धा थी; 2. स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति बड़ा जोश था; और 3. ब्रिटिश सरकार के प्रति अपार घृणा थी। इनमें से एक-एक विशिष्टता को प्रकट करने वाली एक-एक कहानी पर विचार करेंगे। उदाहरण के तौर पर इन तीन कहानियों को लेंगे—'अमर वाष़्वु', 'पोंगुमांगडल' (कुट्रालम शहर के पहाड़ों पर से गिरनेवाला सागर जैसा एक ज़ोरदार झरना), 'माडतेवन् सुनै'।

---

1. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 175.

'अमर वाष्वु' कहानी के माध्यम से कल्कि, सुभाषचंद्र बोस की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उसमें वीच में 'नेताजी विजयम' नामक उपशीर्षकवाला एक अध्याय भी है। इसके अनुसार सुभाषचन्द्र बोस इस कहानी का एक पात्र बनकर आते हैं और वीरोक्तियों से भरा एक ज़ोशीला भाषण देते हैं। कहानी के अंत में इसके दो पात्र राघवन और जनरल कुमरप्पा के बीच जो वार्तालाप चलता है, वह दिल को पिघला देने वाला और मर्मस्पर्शी है। वह इस प्रकार है–

"जनरल साहब, मेहरबानी करके एक वात ज़रूर बता दीजिए। क्या यह सच है कि हमारे प्रिय नेता सुभाषचंद्रजी अब जीवित नहीं हैं?"

"राघवनजी, कैसा सवाल पूछते हैं आप? क्या आज़ाद हिन्द फ़ौज़ के वीरों की कभी मृत्यु हो सकती है? हम सबको अमर जीवन प्राप्त है। ख़ासकर हमारे सुभाष जी का मृत्यु से क्या लेना-देना हो सकता है?" (पृ. 39)

नेताजी सुभाषचंद्र बोस के प्रति कल्कि की आदर-भावना और श्रद्धा-भरे स्नेह को वार्तालाप का यह हिस्सा स्पष्ट कर देता है।

'पोंगुमांगडल' कहानी के अंत में गाँधीजी की प्रशंसा करते हुए कल्कि कहते हैं, "पाशविक शक्ति का सहारा न लेकर और हिंसात्मक घटनाएँ न होने देकर महात्माजी ने भारत को स्वतंत्रता दिलवा दी।"[1]

इसी कहानी के बीच में एक जगह तूत्तुकुडि शहर के व. उ. चिदंबरम पिळ्ळै नामक एक अप्रतिम देशप्रेमी के बारे में कल्कि लिखते हैं–"अंग्रेज़ों का मुक़ाबिला करते हुए जहाज़ चलाने की हिम्मत करने वाले चितंबरम पिळ्ळै स्वतंत्रता-संग्राम के एक अनुपम वीर थे। इनके समान बहादुर व्यक्ति को, त्यागी पुरुष को गुणवान को, उत्तम प्रकृतिवाले को हमने कभी देखा नहीं है। न ही उनके समान किसी के बारे में सुना है। जब वे जेल डाले गए, तब वहाँ रखे कोल्हू को, बैल के बदले, अपने हाथों से रोज़ घंटों खींचने का दंड उनको दिया गया।"[2]

कहानी के बीच में इस घटना का उल्लेख मर्मस्पर्शी बन गया है।

कल्कि की कहानियों में कुछ पात्र चरखा चालते हैं, सूत कातते हैं, खादी पोशाक पहनते हैं। देश की आज़ादी के लिए उत्साह के साथ संघर्ष करते हैं। ये सारी विशेषताएँ उनके खून में मिली रहती हैं। उदाहरण के लिए, 'शारदैयिन् तंत्रम' कहानी की अंतिम पंक्ति है, "श्रीनिवासन ने उस दिन ख़ूब चरख़ा चलाकर सूत कातना सीख लिया था।" (पृ. 32)

---

1. *अमर वाष्वु*, पृ. 128.
2. वही, पृ. 102-103.

कल्कि की कुछ कहानियों में अय्यंपेट्टै (गाँव) कंदप्प पिळ्ळै नामक एक पात्र आते हैं। वे 'तविल' (ढोलक से बड़े आकार का बाजा) बजाने का पेशा करते हैं। वे हमेशा खादी पहनते हैं। कांग्रेस के अधिवेशनों में उनको देखा जा सकता है।[1]

कल्कि के कई पात्र देश को आज़ाद बनाने के लिए अपने प्राणों का बलिदान करना पुण्य कार्य मानते हैं।[2] उनका चित्रण कल्कि तन्मय होकर करते हैं। जब कभी कल्कि को मौक़ा मिला, वे अंग्रेज़ सरकार की खिल्ली उड़ाने से बाज़ नहीं आते। उदाहरण के लिए, उन दिनों की रियासतों के निकम्मे शहज़ादों का परिहास करते हुए 'पुलि राजा' कहानी में वे इस प्रकार कहते हैं–

> "युवराज जंग-जंग बहादुरजी शारीरिक दृष्टि से दिन दुगुनी और रात चौगुनी के हिसाब से विकसित होते जा रहे थे। इसके अलावा उनके बचपन में कोई ख़ास घटना नहीं हुई। अन्य रियासतों के युवराज वर्ग जैसे ही हमारे युवराज बहादुरजी भी विलायती गाय का ही दूध पीते थे। अंग्रेज़ दाई द्वारा उनका पालन-पोषण होता था। अंग्रेज़ शिक्षकों से अंग्रेज़ी ढंग की तालीम पाकर वे बड़े होने लगे।"[3]

हमारे लोगों की गुलाम मनोवृत्ति का माख़ौल उड़ाते हुए कल्कि ने 'गवर्नर विजयम' नामक एक कहानी लिखी है। इसमें किसी शहर में अंग्रेज़ राज्यपाल के पधारने का वर्णन है। उस अवसर पर स्थानीय छोटे-मोटे लोग ओर अपने को नेता माननेवाले लोग तरह-तरह के तिकड़म मचाकर इस बात के लिए तरसते, तड़पते और लालायित होते हैं कि लाट साहब का एक कटाक्ष उन पर पड़े। कल्कि उनकी हरकतों का वर्णन हास्य और तीखा व्यंग्य मिलाकर करते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कल्कि की कहानियों में उनकी देशभक्ति और गाँधीवाद पर उनकी श्रद्धा के उदाहरण जगह-जगह पर बिना ढूँढ़े मिल जाते हैं।

चरित्र-चित्रण

कल्कि की कहानियों को पढ़ने के बाद वे हमारी स्मृति में बहुत समय तक ठहर जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वे अपनी कहानियों के पात्रों को एक विशिष्ट साँचे में ढालते हैं। उनकी शैली भी विशिष्ट होती है, जिसमें आगे-आगे हास्य और पीछे सरल व उपयुक्त शब्दों से बने वाक्य क्रमबद्ध रूप से आते हैं। ऐसी शैली के प्रयोग के कारण कल्कि के पात्र सजीव हो उठे हैं। पाठक को लगता है कि वे पात्र मन की

---

1. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 6.
2. *मायिलै कालै*, पृ. 96.
3. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 140.

आँखों के सम्मुख आकर खड़े हो गए हैं। कहानी के प्रधान पात्र मात्र नहीं, गौण पात्र भी जीवित और परिचित व्यक्ति जैसे लगते हैं। कल्कि ने यही तरीक़ा अपनाकर 'शारदैयिन् तंत्रम' कहानी की नायिका शारदा का वर्णन किया है। वह मनोहर शब्द-चित्र इस प्रकार है–

> "शारदा का शरीर विशुद्ध स्वर्ण की भाँति दमक उठता था। चौड़ा माथा। बौद्धिकता छलकानेवाली आँखें। उन आँखों को बस एक बार देखने पर यह ज़ाहिर हो जाता था कि शारदा अपने कटाक्ष रूपी हथियार की मदद से, चाहे कोई पुरुष हो या स्त्री, सभी को अपने वश में कर लेने की सामर्थ्य रखती है।

उसके अधर ताज़े खिले गुलाब सदृश थे, जिन पर किसी आभूषण के समान मुस्कान चमक उठती थी। शायद इसलिए वह स्वर्णाभूषण या रत्नाभूषण ज़्यादा नहीं पहने हुई थी। वह नीले रंग की खादी की साड़ी पहने हुई थी। ज़रीदार किनारेवाली वह साड़ी उसके शरीर के लावण्य को कई गुना बढ़ाकर दिखा रही थी।"[1]

कल्कि का यह चित्रण तमिष़ में रामायण के रचयिता महाकवि कंबन के नायिका-वर्णन की याद दिलाता है। अब कल्कि द्वारा एक गौण पात्र के वर्णन को लेंगे। गौण पात्र का चित्रण भी वे पूरा मन लगाकर करते हैं।

> "सर, सर, कोई मैडम आ रही हैं, सर!" एक लड़की चिल्लाने लगी। तुरंत सभी लड़कियाँ खिड़की के नज़दीक इकट्ठी होकर तमाशा देखने लगीं। मास्टर साहब ने भी उधर देखा। तुरंत उनको ऐसा लगा कि कमरे की दीवारें, बेंच, कुरसी, मेज़, दावात सब-के-सब उनके चारों ओर चक्कर लगाने लगे हैं। उन्होंने जल्दबाज़ी और हड़बड़ी में श्यामपट्ट को पोंछने के लिए रखे रूमाल को उठाकर चट् से सिर पर साफ़ा जैसा बाँध लिया। मेज़ पर रखी अपनी पगड़ी को खोलकर कंधे पर लंबे तौलिए जैसे लटका लिया। शरीर के ऊपरी भाग पर ओढ़ने के लिए रखे उत्तरीय को हाथ में उठाने के बाद वे असमंजस में पड़े कि उसे क्या करें। चप्पलों की ध्वनि को समीप आते सुनकर उन्होंने उत्तरीय को मेज़ की दराज़ में खोंस दिया। शोर मचानेवाली लड़कियों को साँप जैसे फुफकारते हुए डाँटा, 'अरे पिशाचिनियो, बैठो, अपनी-अपनी जगह बैठ जाओ।' "[2]

कहानी के इस अंश को पढ़ते समय पाठक के मन में स्कूल का वह दृश्य चित्रपट की भाँति पग-पग पर विकसित होकर झलकने लगेगा। जब कोई बेचारा

---

1. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 5-6.
2. *कणैयापियिन् कनवु*, पृ. 11-12.

अध्यापक, ख़ासकर पुराने ढंग का भीरु आदमी, सोचते हैं कि स्कूल विभाग की निरीक्षिका अकस्मात् मुआयने के लिए आ गई हैं। फलस्वरूप वे घबरा उठते हैं और गड़बड़ी में विचित्र हरकतें करने लगते हैं।

लेखक द्वारा हस्तक्षेप

कल्कि के संदर्भ में यह कहना महत्त्व रखता है कि वे जो कुछ लिखते थे और जिस ढंग से लिखते थे, वह सब पाठकों को ही लक्ष्य में रखकर लिखते थे। ईश्वर के प्रति सख्य भावना अपनानेवाले भक्त के समान कल्कि अपने पाठकों को दिली-दोस्त मानकर कहानी सुनाना पसंद करते थे। इसलिए कहानी के बीच-बीच में प्रवेश करके पाठकों से बात करने की उनकी आदत पड़ गई थी।

लेकिन पाठकों के साथ बात करने के संबंध में कल्कि ने किसी नियम का पालन नहीं किया। कहानी के आरंभ में, बीच में, अंत में, कहीं भी, बिना किसी सीमा या नियंत्रण के, किसी भी ढंग से दख़लंदाज़ी करके कल्कि पाठकों को संबोधित करने लगते हैं। कला की दृष्टि से लेखक का ऐसा हस्तक्षेप ज़रूर एक कमी है, लेकिन दख़ल दिए बिना, पाठकों को छोड़े बिना, कल्कि कहानी सुना नहीं पाते थे। एक उदाहरण देखिए–

> "चाहे आप हमारे सुंड़ (सुंदर नाक का संक्षेप) को जानते हों या नहीं, अच्छा होगा कि उसके सामने पड़ने पर यह स्वीकार कर लें कि आप उसे जानते हैं। अगर आप कहें कि उसे सचमुच नहीं जानते हैं, तब भी वह आपको छोड़ देनेवाला नहीं है। आप हाँ कहें या ना, आप जो भी कहें, परिणाम तो यही होगा कि (वह स्नेह से आपकी पीठ पर घूँसा देगा जिससे) आपकी पीठ दर्द के मारे दुखने लगेगी।"[1]

यह अंश 'सुंडुविन् संन्यासम्' नामक कहानी के आरंभ में आता है। इस प्रकार पाठक को सीधे संबोधित करके कहानी शुरू करने की रीति कल्कि को बहुत पसंद थी।

'मयिलै कालै' नामक कहानी से निम्नलिखित अंश उद्धृत है–

> "मुझे खेद है कि मैं पाठकों से पेरुमाळ (नाम) कोनार (यादव जाति) का परिचय नहीं करा सकता हूँ। वज़ह यह कि कहानी में उसके लिए मौक़ा निकलने के पहले ही उनकी मृत्यु हो चुकी थी।" (पृ. 9)

---

1. *अमर वाप्रुवु*, पृ. 62.

यहाँ कहानी के बीच में उपस्थित होकर कल्कि पाठकों को उपर्युक्त सूचना देते हैं।

और एक उदाहरण देखिए—

"उन दोनों कुटुंबों के सदस्यों के बीच, जो पुराने रिश्तेदार थे और जो बाद में दुश्मन हुए और फिर एक हो गए, जल्दी ही एक नया और घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया। क्या पाठकों को यह बताना ज़रूरी है कि वह कौन-सा नया रिश्ता है?"[1]

यह अंश 'ओनूबदु कुषि् निलम्' शीर्षक कहानी से उद्धृत है। यहाँ कल्कि पाठकों को कहानी की समाप्ति की सूचना इस ढंग से देते हैं।

इस प्रकार कहानी के शुरू-मध्य-अंत में या कहानी में कही भी हस्तक्षेप करने के पीछे कल्कि की कोई योजना थी। वे सोचते थे कि ऐसा करने से वे पाठकों को सीधे और जल्दी कहानी के लोक में पहुँचा सकेंगे और पात्रों के साथ पाठकों का तादात्म्य जल्दी हो पाएगा।

अच्छी कहानी का लक्षण

राजाजी स्वयं एक सफल कहानीकार थे। उन्होंने एक लेख में लिखा है—"कहानी एक ऐसा कलात्मक रूप है, जो वामनावतार जैसे संक्षिप्त होती है...अच्छी कहानी कहे जाने के लिए सिर्फ़ एक लक्षण काफ़ी है। उसे पढ़कर पूरा करने के बाद सहृदयों का मन आनंद से फूल उठेगा।"[2]

'तर्कोलै' (आत्महत्या) नामक कहानी का एक पात्र जगन्नाथन बी. ए. की परीक्षा में दो बार फ़ेल हो जाने से रेल के सामने कूदकर आत्महत्या कर लेने का निर्णय करता है। दूसरा पात्र महादेव अय्यर बी. ए. में प्रथम श्रेणी में पास करके तीन साल हो जाने पर भी नौकरी न मिलने से रेल के सामने कूदकर आत्महत्या कर लेने के निर्णय पर पहुँचता है। दोनों युवक एक-दूसरे की स्थिति से वाकि़फ़ न होकर रेल की पटरी तक पहुँच जाते हैं। जब महादेवन कूद पड़ता है, तब जगन्नाथन उसे देख लेता है और प्रयत्न करके उसे बचा लेता है, तब दोनों दिल खोलकर एक-दूसरे से बातें करने लगते हैं। इसका नतीजा यह निकलता है कि दोनों आत्महत्या का विचार छोड़ देते हैं। दोनों मिलकर 'महानाथन कंपनी' नाम से कोई उद्योग शुरू करके उन्नति करने को ठान लेते हैं। दोनों एक साथ कह उठते हैं—"आगे से हम दोनों मिलकर नई शक्ति और नए उत्साह के साथ जीवन-संघर्ष में उतर पड़ेंगें।"[3]

---

1. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 165.
2. *राजाजी कट्टुरैकल* (राजाजी के निबंध), 201, 208.
3. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 186.

इस कहानी को पढ़ने पर पाठकों के मन में जो आत्मविश्वास जागृत होता है वह घंटों साधु-महात्माओं के वचनों को सुनने से प्राप्त विश्वास से भी ज़्यादा ताक़तवर और टिकाऊ होता है। कल्कि ने इस तरह की कई कहानियाँ लिखी हैं, जिनको पढ़ते ही मन में तृप्ति और आत्मविश्वास की प्रेरणा पैदा होती है। इसलिए तमिष़ कहानी साहित्य के इतिहास में कल्कि को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं, जब तमिष़ में कहानी-लेखन पनप रहा था, उस समय आविर्भूत होकर कल्कि ने पाठकों को आकर्षित करनेवाली शैली में कहानियों की रचना की। अपने लेखन और पत्रिका के द्वारा कहानी कला का पालन-पोषण करके उसको विकसित कर दिया। तमिष़ कहानी साहित्य के विकास में कल्कि का योगदान ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

3

उपन्यासकार कल्कि

"तमिष़ उपन्यास के क्षेत्र में कल्कि रा. कृष्णमूर्ति का आगमन बाल रवि के उदय के समान था। उपन्यास को आम जनता के लिए सभी लोगों के, साहित्य के रूप में स्थापित करने का संपूर्ण श्रेय केवल आपको प्राप्त है।"

—मा. रामलिंगम[1]

अंग्रेज़ों के आगमन से हमारे देश को जो थोड़े लाभ हुए, उनमें उपन्यास नामक साहित्यिक रूप का प्रवेश भी एक है। तमिष़ भाषा के संदर्भ में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में ही उपन्यास-साहित्य धीरे से अंकुरित होने लगा। मायूरम शहर के वेदनायकम पिळ्ळै (1826-1899) ने ही तमिष़ में पहले-पहल उपन्यास लिखा था। उनका लिखा उपन्यास *प्रताप मुदलियार चरित्रम* 1876 में प्रकाशित हुआ। यही तमिष़ उपन्यासों में ज्येष्ठतम पुत्रवत् है।

इसके बाद 1896 में राजम अय्यर कृत *कमलांबाल चरित्रम* नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। तमिष़ में पहले धारावाहिक रूप में निकलकर फिर पुस्तक-रूप में प्रकाशित प्रथम उपन्यास यही है।

तमिष़ में तीसरा उपन्यास *पद्मावली चरित्रम* है। यह 1898 में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक मादवैया हैं, यह पहले धारावाहिक रूप में *विवेक चिन्तामणि* नामक पत्रिका में निकला।

वेदनायकम पिळ्ळै, राजम अय्यर और माध्वैया के अतिरिक्त पंडित नरेश शास्त्री, ति. म. पोन्नुसामि पिळ्ळै, पारितिमार् कलैज्ञर आदि भी आरंभकालीन उपन्यासकारों में उल्लेखनीय हैं।

आरंभ काल के उपन्यासों के प्रकाशन के बाद लगभग तीस वर्ष का काल तमिष़ इतिहास में अंधकार युग या पतन युग माना जाता है। इस अवधि में तमिष़

1. *इरुपदाम् नूट्राड़ु तमिल इलक्कियम* (बीसवीं सदी का तमिल साहित्य), पृ. 26.

में अनूदित उपन्यास, अंग्रेज़ी से रूपांतरित उपन्यास और जासूसी उपन्यासों की भरमार हो गई। नीरस ढंग के सुधारवादी उपन्यासों का भी बोलबाला था।

वडुवूर दुरैस्वामी अय्यंगार, आरणी कुप्पुसामी मुदलियार, जे. आ. रंगराजु, वै. मु. कोदैनायकी आदि इस अंधकार युग के लेखक थे, जिन्होंने धड़ाधड़ सैकड़ों उपन्यास लिख डाले। उन उपन्यासों में काल-प्रवाह में डटे रहने की योग्यता नहीं थी, दम नहीं था। फिर भी इसी काल के व. रा. (व. रामस्वामी) और के. सी. वेंकटरमणी स्मरणीय लेखक हैं, जिन्होंने लीक से हटकर लिखा था।

इस वातावरण में तमिष़ उपन्यासों के इतिहास में तीसरे विकास काल यानी पुनर्जागरण काल का शुभारंभ कल्कि के आगमन के साथ हुआ। आगे लगभग बीस वर्ष का समय 'कल्कि युग' के नाम से वर्णित होने लगा। तमिष़ उपन्यास-क्षेत्र में कल्कि का प्रभुत्व इतना ज़ोरदार था।

जासूसी उपन्यासों के प्रसार के कारण उपन्यास पढ़ने को इच्छुक पाठक बड़ी संख्या में पहले ही मौजूद थे। उस भीड़ को कल्कि ने अच्छे स्तर के उपन्यासों के पाठकों के रूप में बदल डाला। *कल्वनिन् कादलि, त्यागभूमि, मकुटपति, सोलैमलै इलवरसि, अलै ओसै, पार्तिबन् कनवु, शिवकामियिन् शपथम आदि* उपन्यासों के द्वारा कल्कि ने तमिष़ प्रदेश के शिक्षित लोगों को अपनी रचनाओं की ओर आकर्षित कर दिया।

इस प्रकार तमिष़ उपन्यास साहित्य के शोधकर्ताओं ने तमिष़ उपन्यासों के इतिहास को तीन कालों में विभक्त किया है और यह दिखाया है कि तीसरा चरण कल्कि के आगमन के साथ क़दम मिलाकर चलता है। अब हम देखेंगे कि तमिष़ उपन्यास साहित्य की श्रीवृद्धि में कल्कि का कितना और कैसा योगदान रहा है।

कल्कि का प्रथम उपन्यास

जब कल्कि के मन में कथासाहित्य की रचना करने की प्रेरणा पैदा हो गई, तब उन्होंने सबसे पहले जिस कृति की रचना की वह *विमला* नामक उपन्यास था। सन् 1922 में वे तिरुच्चि सेण्ट्रल जेल में बंदी के रूप में रहते थे, तब फ़ुरसत के समय उन्होंने यह उपन्यास लिखकर पूरा कर दिया।

इस उपन्यास को व. रा. (व. रामस्वामी) (1889-1951) ने अपनी पत्रिका *स्वतंत्रन* में धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया। कल्कि को सबसे पहले एक उपन्यासकार के रूप में पहचानकर पाठकों से उनका विशेष परिचय करानेवाले व. रा. ही थे। इसका उल्लेख कल्कि ने पच्चीस साल बाद प्रकाशित *व. रा. मणिमलर* (स्वर्ण जयंती स्मारिका) में श्रद्धांजलि के रूप में लिखे लेख में किया है। अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कल्कि उसमें लिखते हैं, "श्री व.रा. जी ने उस समय मेरे लेखन के

प्रति जो उत्साह दिखाया है, वह मुझे लेखन क्षेत्र में बढ़ने के लिए प्रेरित करने का एक मुख्य कारण बना।"

दुर्भाग्य की बात है कि बहुत प्रयास करके ढूँढ़ने पर भी *विमला* उपन्यास का कोई भी अंश अब तक नहीं मिल सका। कल्कि ने कई वर्षों बाद इस उपन्यास के बारे में बताया कि वह एक आत्मकथात्मक रचना थी। उपन्यास का नायक कल्कि जैसे ही अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर असहयोग आंदोलन में कूद पड़ता है।[1]

यह आश्चर्य की बात है कि *विमला* उपन्यास के बाद अगले पंद्रह वर्ष तक कल्कि ने कोई नया उपन्यास नहीं लिखा। अपना दूसरा प्रयास 1937 में ही किया। *आनंद विकटन* पत्रिका में धारावाहिक रूप में *कल्वनिन् कादलि* उपन्यास लिखा। फिर 1939 में *त्यागभूमि* नामक सामाजिक उपन्यास को भी *आनंद विकटन* में ही धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया।

सन् 1941 में अपने नाम से निजी पत्रिका शुरू करने के बाद कल्कि ने उसमें धारावाहिक रूप में *पार्तिबन कनवु* नामक अपना प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। अर्थात् *विमला* उपन्यास के लगभग बीस साल बाद ही कल्कि ने अपना प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का प्रयास किया। इतना विलंब हमें अचरज में डाल देता है, क्योंकि कल्कि की प्रसिद्धि उनके ऐतिहासिक उपन्यासों पर ही अधिकतम टिकी हुई है।

यह सच है कि कल्कि ने सामाजिक उपन्यास ही अधिक लिखे हैं, लेकिन 'कल्कि' नाम सुनते ही उनके ऐतिहासिक उपन्यास ही पाठकों की याद में पहले उभर उठते हैं। डॉ. मु. वरदराजन *तमिष़ इलक्किय वरलरु* (तमिष़ साहित्य का इतिहास) में यह विचार प्रकट करते हैं—"कल्कि उपनामवाले रा. कृष्णमूर्ति ने तमिष़ साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों को गौरवपूर्ण स्थान दिलवाया। उन्होंने *त्यागभूमि, मकुटपति, अलै ओसै* आदि सामाजिक उपन्यास भी लिखे थे। परंतु ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ही उन्हें बड़ी ख्याति मिली।" (पृ. 273)

तीन भव्य ऐतिहासिक उपन्यास

कल्कि का पहला ऐतिहासिक उपन्यास *पार्तिबन् कनवु* है। सातवीं शताब्दी में पल्लव साम्राज्य के शासक महेन्द्रवर्म पल्लवन के जीवन पर यह उपन्यास आधारित है। यह *कल्कि* पत्रिका में पंद्रह सप्ताह में पूरा हुआ। फिर 1943 में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। तमिष़ साहित्य के प्रसिद्ध एस. वैयापुरि पिळ्ळै ने इस उपन्यास की भूमिका लिखी थी। उसमें वे घोषित करते हैं कि यह एक अद्भुत ऐतिहासिक प्रेमाख्यान है।

---

1. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 118.

इसके बाद कल्कि का दूसरा ऐतिहासिक *शिवकामियिन् शपथम* जनवरी 1944 से धारावाहिक रूप में निकलने लगा। ढाई साल बाद वह पूरा हुआ। यह आकार में *पार्तिबन् कनवु* से दुगुना है। यह भी पल्लव साम्राज्य के इतिहास से ही संबंधित रचना है। प्राचीन तमिष़ मकाकव्यो में *सिलप्पतिकारम्* (नूपुर गाथा) और *मणिमेखले* (नायिका का नाम) को जुडवाँ महाकाव्य पुकारने का रिवाज है। उसी प्रकार पल्लव कुल के इतिहास पर ही आधारित *पार्तिबन् कनवु* और *शिवकामियिन् शपथम* जोड़े को पाठक और समीक्षक जुड़वाँ उपन्यास पुकारा करते हैं।

कई विद्वानों ने एकमत होकर यह घोषणा की है कि *शिवकामियिन् शपथम* ही कल्कि की सर्वश्रेष्ठ रचना है। तमिष़ साहित्य के इतिहास में उसको एक महाकाव्य के सदृश गौरवपूर्ण स्थान मिला है। तमिष़ के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी हम उसको सिरमौर मान सकते हैं। *कल्कि* पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उसकी भूमिका डॉ. सुब्बरायन ने लिखी, जो उस समय तमिलनाडु सरकार में गृहमंत्री थे। जैसे महाकवि भारती ने केवल द्रौपदी की प्रतिज्ञा को विषय वस्तु बनाकर *पांचाली शपथम* नाम का अलग काव्य लिख डाला, उसी प्रकार कल्कि ने शिवकामी की प्रतिज्ञा को एक महान् उपन्यास का रूप दे दिया।

ऐतिहासिक उपन्यासों की अपनी शृंखला में कल्कि ने तीसरी कड़ी के रूप में एक भीमकाय उपन्यास लिखा, जिसका नाम है *पोन्नियिन् सेल्वन्*। यह सम्राट राजराज चोलन के जीवन पर आधारित है। यह नरेश परवर्ती चोल राजाओं में एक है। यह चोल नरेश ग्यारहवीं शताब्दी ई. में तंजाऊर को अपनी राजधानी बनाकर शासन करता था। यह उपन्यास आकार में *शिवकामियिन शपथम* से दुगुना और *पार्तिबन् कनवु* से चौगुना है। कल्कि ने इसे 1950 में लिखना शुरू किया। धारावाहिक रूप में प्रकाशित होकर इसके समाप्त होने में लगभग साढ़े तीन वर्ष लग गए। यह उपन्यास कल्कि के निधन के बाद पाँच भागों में (2300 पृष्ठ) 1959 में प्रकाशित हुआ।

इस उपन्यास की प्रथम भाग की भूमिका राजाजी ने लिखी। उसमें वे पूछते हैं—"कल्कि के उपन्यास के लिए मेरी भूमिका की आवश्यकता ही क्या है? सूर्य के प्रकाशित होने के लिए दीपक की ज़रूरत नहीं है। न तेल और न बत्ती ही आवश्यक है।" यह उल्लेखनीय है कि नई पीढ़ी के लाभ के लिए यह उपन्यास 'कल्कि' पत्रिका में 1999 से चौथी बार धारावाहिक प्रकाशित होने लगा।

उपर्युक्त तीनों रचनाएँ तमिष़ ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में "अग्रदूत कहने योग्य या पथप्रदर्शक कृतियाँ मात्र नहीं थीं, बल्कि अनुकरणीय उदाहरण भी रहीं। यद्यपि ये उपन्यास प्रथम प्रयास माने जा सकते थे तो भी प्रौढ़ उपलब्धियों की कोटि में आ जाते हैं।"[1]

---

1. *पोन्नियिन पुदल्वर*, पृ. 561

ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का उद्देश्य

कल्कि अपने बचपन के समय से लेकर अंग्रेज़ी के वहुत-से ऐतिहासिक उपन्यास पढ़ने में रुचि लेते थे। विशेष रूप से वॉल्टर स्काट, विक्टर ह्यूगो जैसे लेखकों के ऐतिहासिक उपन्यासों को वे बड़े चाव से पढ़ते थे। फलस्वरूप कल्कि के मन में यह प्रेरणा पैदा हुई होगी कि तमिलनाडु के इतिहास की प्रमुख घटनाओं को लेकर दो-चार उपन्यास लिखने चाहिए।

और एक कारण भी हो सकता है। कल्कि 1932 से *आनंद विकटन* पत्रिका में उपसंपादक थे। इस पत्रिका ने 1934 में एक उपन्यास प्रतियोगिता चलाई। उसमें वेंकटरामन नामक लेखक के *मंजुला* शीर्षक ऐतिहासिक उपन्यास को पुरस्कार मिला।

पत्रिका के उप-संपादक के रूप में कल्कि ने इसे और इस तरह के कई अन्य उपन्यासों को पढ़ा होगा।

इसके अतिरिक्त, कल्कि ने ऐतिहासिक उपन्यास के नाम से प्रकाशित *मोहनांगी* (1895), *मंगम्माल* (1903), *सत्यवल्ली* (1910), *विजयशीलम* (1916) आदि रचनाओं को भी ज़रूर पढ़ा होगा। इन उपन्यासों की कथावस्तु काल्पनिक थी, लेकिन ढाँचा इतिहास का था। कल्कि के मन में उपन्यासों के ढाँचे का अनुकरण करते हुए सचमुच की ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित उपन्यास लिखने की आकांक्षा पैदा हुई होगी।

एक आश्चर्यजनक अनुभव के कारण भी कल्कि ऐतिहासिक उपन्यासकार बने। एक बार कंबरामायण के महापंडित चिदंबरनाथ मुदलियार तथा दो अन्य मित्रों के साथ महाबलिपुरम घूमने गए। वहाँ चाँदनी रात मे, समुद्र के किनारे, रेतीली ज़मीन पर बैठकर चारों जन गपशप का आनंद उठा रहे थे, तब कल्कि को अचानक ऐसा आभास हुआ कि पल्लव शासन काल के शिल्पी आयनर, उनकी पुत्री शिवकामी, महेन्द्रवर्म पल्लवर, नरसिंहवर्मर, पार्तिब चोलन, उसका पुत्र विक्रमन, राणी अरुलमोषि, कुंदवि, पोन्नन, वल्ली, कण्णन, कमली, चालुक्य नरेश पुलिकेसिन, नागनंदी आदि पात्रों का जुलूस-सा निकला। वह जुलूस कल्कि के निकट पहुँचा। फिर वे पात्र एक-एक करके कल्कि के मन में प्रवेश करके वहीं बस गए।

कल्कि ने *शिवकामियिन् शपथम* की भूमिका में लिखा है कि उपर्युक्त घटना बारह साल पहले घटी थी। यह उपन्यास 1944 से *कल्कि* पत्रिका में धारावाहिक रूप में निकलने लगा था और 1946 में समाप्त हुआ। इसलिए हम अनुमान कर सकते हैं कि लगभग 1934 में ही कल्कि के मन में कोई ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का विचार पैदा हुआ होगा। यह विचार धीरे-धीरे विकसित होने लगा। फिर भी सात साल बाद ही, 1941 में ही, कल्कि इस विचार को साकार रूप दे सके, लेकिन यह एक विचित्र बात है कि यद्यपि कल्कि के मन में *शिवकामियिन् शपथम* की कथावस्तु ही पहले उदित हुई थी, तो भी उन्होंने *पार्तिबन् कनवु* को पहले धारावाहिक रूप में लिखकर पूरा किया।

पार्तिबन् कनवु का बुनियादी मक़सद

ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में कल्कि के उतरने की पृष्ठभूमि में वाल्टर स्काट, विक्टर ह्यूगो आदि विदेशी लेखकों की प्रेरणा सक्रिय थी ही, लेकिन उससे भी ज़ोरदार कारण एक था। हम ऐसा मान सकते हैं कि तमिष़भाषी जनता को तमिष़ देश के प्राचीन इतिहास और संस्कृति समझाने तथा उनके मन में देशभक्ति और स्वतंत्रता की चाह के बीज बोने के महान् उद्देश्य को लेकर कल्कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखने लगे। इस दिशा में उन्होंने एकाग्रता के साथ परिश्रम किया। महाकवि भारती ने अपनी कविताओं के द्वारा देश-प्रेम जगाने और समाज में सद्विचारों को फैलाने का जो महान् कार्य किया, वही काम कल्कि ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा कर दिखाया। इस संदर्भ में भारती के एक गीत की कुछ पंक्तियों को हिन्दी में अनुवाद करके यहाँ प्रस्तुत करना उपयुक्त रहेगा। वह अंश इस प्रकार है—

"हमारे माँ-बाप परस्पर प्यार कर
रहे ख़ुशी से इसी देश में—जिनके
पूवर्ज हज़ारों वर्षों से रहते आकर
समाप्त हुए इसी देश में—जिनके
दिमाग़ में हज़ारों विचार उठकर
संपन्न हुए इसी देश में—जिसकी
वंदना करके स्थापना कर मन में
क्यों न संपूर्ण वाणी से स्तुति करूँ?
'वंदेमातरम्, वंदेमातरम्' जपकर
क्यों न बार-बार प्रणाम करूँ?"

इसी तरह के विचार से कल्कि भी प्रेरित हुए। *कल्कि* नामक निजी पत्रिका को 1 अगस्त 1941 में शुरू करने और उसके छठे अंक में ही (16 अक्तूबर 1941 वाला अंक) अपने प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास *पार्तिबन् कनवु* को आरंभ करने के पीछे कल्कि की देशभक्ति और स्वतंत्रता की चाह अत्यधिक सक्रिय हो रही थीं।

कल्कि ने अपने इस उपनाम से निजी पत्रिका शुरू करते समय उसके उद्देश्यों को प्रथम अंक में एक काल्पनिक पाठक के साथ वार्तालाप के रूप में स्पष्ट किया है जो इस प्रकार है—

"जी, आपने जो तमिष़ पत्रिका शुरू कर दी है, उसके उद्देश्य क्या हैं, जी? वैसे तो जो भी शख़्स नई पत्रिका शुरू करता है, वह उसके कुछ-न-कुछ उद्देश्यों का उल्लेख ज़रूर करता है। यह एक रूढ़ि-सी बन गई है। इसलिए पूछता हूँ।"

"मैं बताऊँगा, जी। इस पत्रिका के तीन उद्देश्य हैं। पहला उद्देश्य है देश की भलाई।"

“दूसरा?”

“दूसरा उद्देश्य है देश भलाई।”

“अच्छा, तीसरा उद्देश्य?”

“तीसरा उद्देश्य भी देश की भलाई ही है।”

इस प्रकार देश के कल्याण को ही ध्यान में रखकर कल्कि ने अपनी पत्रिका शुरू। इतने से ही वे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने देखा कि उस ज़माने में देश के लोग जानवरों और क्षुद्र जीवों की भाँति निन्दनीय जीवन बिता रहे थे। नाम से भारतीय मगर असल में गुलाम थे। ऐसे भावहीन और विचार-शून्य लोगों को देशभक्ति की भावना से प्रेरित करने के उद्देश्य से ही कल्कि ने अपने प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास *पार्तिबन् कनवु* की रचना की थी।

प्रोफ़ेसर वैयापुरी पिळ्ळै ने इस उपन्यास की भूमिका लिखी। वे भी इस उपन्यास के प्रेरणास्रोत के रूप में कल्कि की देशभक्ति को ही मानते हैं। भूमिका का वह अंश यहाँ उद्धृत है—

> “चोल देश अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व खोकर पल्लव सम्राट का गुलाम हो जाता है। चोल नरेश पार्तिबन् दिन-रात, सोते-जागते यह स्वप्न देखते हैं कि उनका देश पल्लव शासन से मुक्त होकर स्वतंत्र बन जाए और चोल देश की कीर्ति सारे भरतखंड में फैल जाए। वे अपने स्वप्नों को, अपनी प्रतीक्षाओं की खुद चित्रों के रूप में एक मंडप में खींच देते हैं। एक दिन राणी अरुलमोष़ि और युवराज विक्रमन को उस मंडप में ले जाकर अपने चित्रमय स्वप्न लोक से उनका परिचय करा देते हैं। चोल राज्य को फिर स्वतंत्र बनाने के लिए वे पल्लव सम्राट नरसिंह वर्मन की सेना से वीरतापूर्ण युद्ध करके मारे जाते हैं। इस प्रकार इस उपन्यास के शुरू से अंत तक देशभक्ति ही आधार ध्वनि के रूप में झंकृत हो रही है।”

उपर्युक्त विचार को ही दूसरे ढंग से डॉ. ता. वे. वीरासामी ने अपनी पुस्तक *तमिष़ जावल वकैकल* (तमिष़ उपन्यास के प्रकार) में इस प्रकार व्यक्त किया है—

> “स्वतंत्रता से वंचित गुलाम भारत की दयनीय हालत की स्मृति को पाठकों के मन में गहराई से स्थापित करने के लिए, स्वतंत्रता की चाह की भावना के अंकुरित होते वक़्त बहुत-सी यातनाओं का सामना करना पड़ने पर भी उस भावना को स्थायी रखने के लिए तथा शासकों द्वारा देशभ्रष्ट किए जाकर सुनसान द्वीपों में पहुँचाए जाने पर भी उन देशभक्तों के हृदय में स्वतंत्रता की चाह को प्रज्वलित रखने के लिए कल्कि ने *पार्तिबन् कनवु* नामक उपन्यास की रचना की। इस कृति में गुलामी में पड़े हुए चोल राज्य के शासनकर्त्ता और प्रजा को उन्हें अपने अधीन रखनेवाले पल्लव साम्राज्य से विद्रोह करते हुए दिखाकर

कल्कि पाठकों के मन में छिपी पड़ी राष्ट्रीय भावना को उत्तेजित करते हैं, ताकि देश को स्वतंत्र बनाने के लिए वे तड़प उठें।" (पृ. 163)

इस तरह देश की वर्तमान परिस्थिति को कलात्मक ढंग से पृष्ठभूमि बनाकर लिखने के कारण कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों में एक अनोखे ढंग का आकर्षण दृष्टिगोचर होने लगा। पुराने इतिहास को ज्यों-का-त्यों चित्रित करना कल्कि का उद्देश्य नहीं था। वे तुलना करके देखने लगे कि तत्कालीन दासता की अवस्था में परिवर्तन लाने के लिए पुरानी ऐतिहासिक सामग्री से कैसी और कितनी मदद मिल सकती है। इसलिए जहाँ भी और जितना भी संभव हो, कल्कि ने स्वतंत्रता के लिए तीव्र आकांक्षा और देशभक्ति की भावना को कथावस्तु में मिलाकर अपने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे।

उदाहरण के तौर पर *पार्तिबन कनवु* उपन्यास में रणभूमि में मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए पार्तिबन से उनके शत्रु पल्लव सम्राट नरसिंह वर्मन संन्यासी के वेश में आकर मिलते हैं और उनकी आख़िरी इच्छा के बारे में पूछते हैं। अपने शत्रु को पहचाने बिना पार्तिब चोलन अपने दीर्घकालीन मनोरथ को—अपने स्वप्न को—प्रकट करते हुए कहते हैं—

"चोल देश पूर्ववत् स्वतंत्र देश बन जाए। वह महान् उन्नति को प्राप्त करे। मेरा पुत्र विक्रमन एक वीर पुरुष के रूप में विकसित हो जाए। चोल देश की उन्नति ही उसके जीवन का लक्ष्य बने। आप उसको समझाएँ और सिखाएँ कि प्राण उतने मूल्यवान नहीं हैं; ऐश-आराम उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है; इज़्ज़त और बहादुरी ही सबसे बढ़कर है। विदेशियों के सामने सिर झुकाकर जीवन चलाने की स्थिति से घृणा होनी चाहिए।" (पृ. 61-62)

पार्तिबन यहाँ अपनी जो मनोकामना व्यक्ति करते हैं, वह पुराने चोल देश मात्र पर लागू नहीं होता, बल्कि वह कल्कि के समय के भारत के लिए उपयुक्त है जो पिछड़ा हुआ था, ग़रीब था, गुलाम था, उजड़ा हुआ था। पार्तिबन की उक्ति संसार के किसी गुलाम देश के संदर्भ में उचित लगती है।

कल्कि का अथक परिश्रम

प्रोफ़सर पूवण्णन ने कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों का सूक्ष्म अध्ययन करके डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की थी। वे कल्कि के विशेष परिश्रम की ओर इशारा करते हुए लिखते हैं—

"सामाजिक उपन्यासकार को केवल एक घोड़े पर सवार करने वाला मानें, तो ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कल्पना रूपी दो घोड़ों पर सवार करनेवाला

वीर जैसा है। उसका एक-एक पैर एक-एक घोड़े पर रखा हुआ है। वह ज़रा भी असावधान रहे, तो उन घोड़ों में एक आगे बढ़कर या पीछे हटकर उसको गिरा देगा।"[1]

यहाँ इसका उल्लेख करना आवश्यक है कि कल्कि ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय घोर परिश्रम किया। जैसे जी. यू. पोप ने अपने को एक विनम्र तमिष़ छात्र मानकर तमिष़ की बड़ी सेवा की थी,[2] उसी प्रकार कल्कि भी अपने को इतिहास का विनम्र छात्र मानकर उसके अध्ययन में लीन हो गए। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए कड़ी मेहनत करके आवश्यक सामग्री इकट्ठा की। पल्लव, पांडिय और चोल वंशों के शासकों के इतिहास को विषय बनाकर टी. वी. सदाशिव पंडारत्तार, के. ए. नीलकंठ शास्त्री, आर. गोपालन, सी. मीनाक्षी आदि विद्वानों ने तमिष़ और अंग्रेज़ी में जो ग्रंथ लिखे हैं, उन्हें कल्कि ने ढूँढ़-ढूँढ़कर प्राप्त करके उनका गहरा अध्ययन किया। इतने से वे संतुष्ट नहीं हुए।

कल्कि ने शिलालेखों और प्राचीन ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण बातों की जाँच की। अपने उपन्यासों से संबंधित जगहों की यात्रा करके उन्होंने आवश्यक सामग्री का संग्रह किया। *पार्तिबन कनवु* तथा *शिवकामियिन् शपथम* लिखने के लिए उन्होंने महाबलिपुरम, अजंता आदि जगहों का भ्रमण किया। *पोन्नियिन् सेल्वन* उपन्यास के लिए वे तंजाऊर के अलावा श्रीलंका को भी गए। इतना परिश्रम उठाकर बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ लिखे जाने के कारण ही उनके ऐतिहासिक उपन्यास अत्यधिक सफल हुए। सामान्य जनतामात्र से नहीं, बल्कि इतिहास के विद्वानों के द्वारा भी सर्वसम्मति से वे उपन्यास प्रशंसित हुए। उदाहरण के लिए, प्रोफ़ेसर के. वी. रंगस्वामी अय्यंगार का मत इस प्रकार है—

> "अपने लंबे जीवन में मैंने सैकड़ों ऐतिहासिक उपन्यास पढ़े हैं। इस अध्ययन के आधार पर मैं समझ गया हूँ कि एक अच्छे उपन्यास में क्या-क्या लक्षण अपेक्षित हैं। मैं महसूस करता हूँ कि *पार्तिबन कनवु* एक अच्छे उपन्यास के अधिकांश लक्षणों से युक्त है। मैंने *शिवकामियिन् शपथम* का सूक्ष्म अध्ययन कर देखा। उसमें एक भी ऐतिहासिक ग़लती या एक भी भौगोलिक भूल दृष्टिगोचर नहीं होती।"[3]

---

1. *कल्कियिन् वारलाटरु नावलकल* (कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यास), पृ. 10.
2. जी. यू. पोप (1820-1907) ने 40 वर्ष तमिलनाडु में रहकर ईसाई धर्म का प्रचार किया। साथ-साथ तमिष़ सीखकर कई ग्रंथ लिखे। फिर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में 20 साल तमिष़ पढ़ाते रहे। उनकी क़ब्र पर अंकित वाक्य है : तमिष़ का एक विनम्र छात्र।'
3. *शिवकामियिन् शपथम*, भूमिका, पृ. i, vii

कल्कि अत्यधिक आनंदित हो उठे कि उनके प्रथम दो ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए इतनी प्रशंसा मिलने लगी। उन्होंने खुश और भाव-विभोर होकर कहा—"स्वतंत्रता प्राप्त चोल राज्य के सिंहासन पर विराजमान होते समय पार्तिबन का पुत्र विक्रमन जितना प्रफुल्लित हुआ होगा, उतना खुश मैं विद्वानों की प्रशंसा पाकर हो उठा।"[1]

कल्कि की भाषा-शैली

कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों ने कथावस्तु के पिरोने के रोचक ढंग और सजीव चरित्र-चित्रण मात्र से नहीं, बल्कि सरल-सशक्त भाषा-शैली द्वारा भी हज़ारों पाठकों को आकर्षित कर दिया। यह कोई अत्युक्ति नहीं है। उनकी तमिष़ शैली उच्च शिक्षित विद्वानों को ही नहीं, अल्प शिक्षित औसत जनों को भी आनंद देनेवाली रही।

पार्तिबन् कनवु की भूमिका में प्रोफ़सर वैयापुरी पिळ्ळै कल्कि की भाषा-शैली को सराहते हुए लिखते हैं—

> "इस उपन्यासकार की तमिष़ शैली विशेष रूप से उल्लेखन करने योग्य है। वे सर्वत्र प्रचलित और उपयुक्त शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। वे जान-बूझकर विशुद्ध और पुराने तमिष़ शब्दों को ढूँढ़कर उनका प्रयोग नहीं करते। संस्कृत से आकर तमिष़ में मिले हुए शब्दों का बहिष्कार भी नहीं करते। उनकी शैली सीधी और स्पष्ट है, भावपूर्ण है, पाठकों को अपने साथ बहा ले जाने की सामर्थ्य रखती है। वातावरण और पात्रों के लिए अनुकूल शैली है। वह इस उपन्यास के लेखक को वर्ततान समय के गद्यकारों की प्रथम पंक्ति में स्थान मिला है।" (पृ. viii)

मलेशिया विश्वविद्यालय के प्रोफ़सर तनिनायकजी कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों की शैलीगत विशेषताओं के बारे में इस प्रकार लिखते हैं—

> "कल्कि की शैली पढ़ने-सुनने के लिए, क्रिया-कलापों को प्रेरित करने के लिए अंतरात्मा के लिए तृप्तिदायक शैली है। वह नीरस किताबी शैली नहीं है, बल्कि बोलचाल की भाषा को परिमार्जित रूप में प्रस्तुत करनेवाली कोमल शैली है। वह भावों को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है और लेखक के दिल में जो कुछ हो रहा है, उसका परिचय करा देती है। वह जीवन की समस्याओं में फँसे लोगों को विचार-धन प्रदान करनेवाली शैली है। कल्कि अपनी भाषा में जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, वे जीवन के अनुभवों को स्पष्ट रूप से प्रकट करने की सामर्थ्य रखते हैं।"[2]

---

1. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 559.
2. *एषुत्तालर कल्कि* (कल्कि एक लेखक के रूप में), सं. क. पो. रत्नम, पृ. 86-87.

उपर्युक्त दोनों तमिष़ विद्वानों के विचारों को सत्य सिद्ध करनेवाले तीन उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं। पहले *पार्तिबन कनवु* के दूसरे भाग के प्रारंभ में सुबह के समय की मनोहरता का वर्णन कल्कि के शब्दों के द्वारा जितना कलात्मक बन गया है, उसे देखेंगे।

> "पौ फटने के लिए आधा पहर बाक़ी था। क्षितिज के निचले भाग में चाँद का टुकड़ा और शुक्रतारा पास-पास चमक रहे थे। आकाश के मध्य भाग में तारे अब भी इतने जाज्वल्यमान थे, जैसे हीरे की कणिकाएँ फैला दी गई हों। उत्तर की तरफ़ सता नक्षत्रों का सप्तर्षि मंडल रंगोली जैसे शोभित हो रहा था। दक्षिण के कोने में स्वाति नक्षत्र विशेष शोभा सहित स्वतंत्र शासन कर रहा था।" (पृ. 64)

उपर्युक्त प्रकृति-वर्णन करते समय कल्कि ने न तो देशज शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़कर उनका प्रयोग किया और न तत्सम शब्दों के प्रयोग से परहेज़ रखा। इस दृश्य वर्णन के लिए उचित काव्यात्मक शब्दों के प्रयोग करने में कल्कि सफल हुए हैं।

भावपूर्ण शैली के उदाहरण के रूप में *शिवकामियिन् शपथम* से एक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है। यह शैली वातावरण और चरित्र-चित्रण के लिए भी उपयुक्त सुस्पष्ट शैली है। मंडपपट्टु गाँवे के शिवजी के मंदिर में लट्टू के समान घूम-घूमकर नृत्य करनेवाली शिवकामी को अपने शब्द-चित्र द्वारा कल्कि हमारी अतर्दृष्टि के सामने उपस्थित कर देते हैं।

> "शिवकामी चक्कर लगाकर नृत्य करने लगी, तब दर्शकों की आँखें भी चारों तरफ़ मँडराने लगीं। रंगमंच और उस पर सजे माटी के दीए भी घूम उठे। सारा मंदिर घूमने लगा। उसके गोपुर-कलश झूम उठे। गाँव के मठ का स्वर्ण ध्वजस्तंभ हिलने-डुलने लगा। भूमि और आकाश बारी-बारी से चढ़ने-उतरने लगे। चाँद और नक्षत्र मंडल भी लगातार घूमने लगे।" (पृ. 407)

पाठकों को अपने साथ ले चलने में कल्कि की शैली सदा सफल रही है। उदाहरण के रूप में *पोन्नियिन सेल्वन* से एक अंश देखेंगे—

> "वहाँ क्या हलचल हो रही है? उधर के पेड़ पर से नज़र आनेवाली वह काली आकृति किसकी है? अंधकार में उस झाड़ी में से रोशनी के दो नुक़्ते जैसा जो टिमटिमा रहा है वह क्या हो सकता है?"
>
> "वंदियतेवन (पात्र) के पैर अपने-आप काँपने लगे। वह सोचने लगा, 'इधर मेरा काम ही क्या है? यहाँ मैं किसलिए आया? कैसी बेवकूफ़ी की है! तुरंत उतरकर चले जाना ही चाहिए।"
>
> "उतरने को सोचकर जब वह मुड़ने का यत्न करने लगा, तब एक आवाज़ सुनाई पड़ी। वह दिल को चीर देनेवाली आवाज़ थी। वह एक स्त्री की आवाज़ थी, तब एक सिसकी सुनाई पड़ी। फिर एक गीत फूट पड़ा—

"जब लहरोंवाला सागर भी है शांत-श्रांत
मेरा अंदरवाला सागर क्यों उबल रहा है?
जब धरती माता सो रही है आराम से
मेरा दिल ही क्यों शोक से फूल रहा है?"

श्रोता के तन-मन को तड़पा देनेवाले इस शोक गीत को गानेवाली इस उपन्यास का एक स्त्रीपात्र पूंकुषलि है।

अनुपम ऐतिहासिक कृति

एक फूल है, जिसे तमिष़ में कुरिञ्चि मलर कहते हैं। हर बारह वर्षों में एक बार पुष्पित होना उसकी विशेषता है।[1] इसी प्रकार बारह वर्ष तक कल्कि के मन में निवास करके, धीरे-धीरे उपन्यास का रूप लेकर, उचित समय आने पर श्रेष्ठ कलाकृति के रूप में *शिवकामियिन् शपथम* प्रकट हुआ। इसे गद्य में रचित महाकाव्य कहा सकते हैं। इसकी भूमिका की निम्नलिखित पंक्तियों में लेखक अपना दिल खोलकर रख देते हैं—

"...मैं इतना बोझ लगभग बारह वर्ष तक अपने मन में लादकर, सँभालकर आ रहा था *शिवकामियिन्* को पूरा करके आख़िरी अध्याय, आख़िरी पृष्ठ, आख़िरी पंक्ति लिखकर, नीचे बड़े अक्षरों में 'समाप्त' लिख देने के बाद बारह वर्षों का वह बोझ उतरकर हट गया।"

"महेन्द्र वर्मर, नरसिंह वर्मर, शिल्पी आयनर, शिवकामी, परमज्योति, पार्तिबन, विक्रमन, कुंदवी और अन्य कथापात्र मेरे हृदय से उतरकर, प्रेम के साथ 'अब हम चलते हैं' बोलकर मुझसे विदा लेकर चले गए।" (पृ. 7-8)

धरती के लिए वृक्ष कोई भार नहीं है। पेड़ के लिए पत्ता भार नहीं है। लता के लिए कच्चा फल कोई बोझ नहीं है। अपना शिशु माँ के लिए बोझ नहीं है। पात्रों के सृष्टिकर्त्ता लेखक के लिए लेखन कार्य पूरा होने तक उन पात्रों को अपने दिल में ढोना भार-सा लग सकता है। मगर है वह ममता से भरपूर सुखद भार।

शिवकामियिन् शपथम का कलात्मक सौन्दर्य

डॉ. एपिल् मुदल्वन *शिवकामियिन् शपथम* की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—"तमिष़भाषी लोगों को जीवन भर इसका अध्ययन करके रसास्वादन करना चाहिए, उतने कलात्मक सौन्दर्य से संपन्न कृति है यह।" वे इस उपन्यास की तीन विशेषताओं की ओर इंगित

---

1. इस फूल की पाँच पंखुड़ियाँ हैं, जो नीले या बैंगनी रंग की होती हैं। वनस्पति विज्ञान में इसका नाम है Strobianthus Runthiyana.

करते हैं, जिनके आधार पर तीन प्रकार से इसका मूल्यांकन कर सकते हैं। वे लिखते हैं–

"मेरी नज़र में *शिवकामियिन् शपथम* एक नई रामायण के समान दृष्टिगोचर होता है। एक अन्य कोण से *यात्री की प्रगति*[1] नामक (अंग्रेज़ी) उपन्यास जैसा लगता है, जो एक रूपक है। एक अन्य दृष्टिकोण से वह *दो शहरों की कथा*[2] नामक (अंग्रेज़ी) उपन्यास जैसा मालूम होता है।"[3]

1. रामायण के बारे में पुराने व्याख्याकर्त्ता कहा करते थे कि वह वस्तुतः बंदी बनाई गई नायिका की महिमा बखाननेवाला महाकाव्य है। यह उक्ति *शिवकामियिन् शपथम* के संदर्भ में भी सही लगती है। कारण यह कि पुलकेसिन (ई. 609-642) द्वारा बंदी बनाई गई शिवकामी की गरिमा का ही वर्णन कल्कि ने इस उपन्यास में किया है। जिस प्रकार भक्त लोग सीता को श्रद्धा से सीता देवी कहते हैं, उसी प्रकार शिवकामी को कल्कि शिवकामी देवी पुकारते हैं। यह संबोधन ध्यान देने योग्य है। रामायण के सुंदर कांड में सीताजी और *शिवकामियिन् शपथम* के अंतिम दो अध्यायों में शिवकामी–ये दोनों नायिकाएँ आँसुओं से खींचे गए चित्र लगती हैं। आगे कल्कि का वर्णन पढ़कर पाठक को अनायास ही रामायण की याद ज़रूर आएगी।

"रावण द्वारा उड़ाए ले जाकर अशोकवन में बंदी के रूप में रखी गई सीताजी की याद शिवकामी को अक्सर आती थी, उसे लगा कि वह उसी हालत में है, जिस हालत में सीताजी थीं। जिस प्रकार रामचंद्रजी रावण को पराजित कर और सीताजी को अशोकवन के कारावास से मुक्त करके अयोध्या ले चले, उसी प्रकार नरसिंह वर्मर एक दिन आकर, इस अधम पुलकेसिन को हराकर और उसे जेल से छुड़ाकर अपने साथ ले चलेंगे।" (पृ. 700)

पुलकेसिन द्वारा अपनी राजधानी वातापि शहर में जेल में रखी हुई शिवकामी विश्वास करती है कि वह जल्दी मुक्त हो जाएगी। जेल में उससे मिलने के लिए बौद्ध भिक्षु नागनंदी आते हैं, जो पुलकेसिन के जुड़वाँ भाई हैं। उनसे बात करते समय शिवकामी ज़ोशीली आवाज़ में शपथ लेती है। उसे पढ़ते समय हम रोमांचित हो उठते हैं। वह शपथ इस प्रकार है–

"पूज्य स्वामी जी, ध्यान देकर सुनिए। क्या मैं बताऊँ कि मैं कब तक इस वातापि शहर को छोड़कर जाने को सहमत हो जाऊँगी? आपने डरपोक

---

1. *The Pilgrim's Porgress* by John Bunyan (1628-1688)
2. *A Tale of Two cities* by charles Dicknes (1812-1870)
3. *पुनैकथै वलम* (कथासाहित्य की संपदा), पृ. 26.

पुकारकर जिस वीर पुरुष माल्लर जी (नरसिंह वर्मर) की निन्दा की थी, वे एक दिन ज़रूर सेना के साथ आकर इस शहर पर धावा करेंगे। लोमड़ियों के झुंड पर झपटनेवाले सिंहराज जैसे वे चालुक्य सेना को तितर-बितर कर देंगे। चौराहों पर नृत्य करने के लिए जिस पापी पुलकेसिन ने मुझ मजबूर किया था, उसे यमपुर भेज देंगे। तमिलनाडु के स्त्री-पुरुषों के हाथों को बाँधकर जिन सड़कों पर उनका जुलूस निकाला गया, उन ही सड़कों से होकर चालुक्यों के ख़ून की नदी बह उठेगी। उन निरपराध लोगों को जिन चौराहों पर खड़ा करके चाबुक़ से पीटा गया, उन जगहों पर वातापि की प्रजा की लाशें अनाथ बिखरी पड़ी मिलेंगी। चालुक्यों की इस राजधानी के आलीशान महल और मीनारों से युक्त ऊँचे भवन सब जलकर राख हो जाएँगे। यह शहर एक विशाल श्मशान का रूप ले लेगा। उस दृश्य को आँख भरकर देखने के बाद ही मैं इस शहर से निकलने का नाम लूँगी। इन दुष्ट चालुक्यों को जीतकर, विजयहार, पहनकर मामल्लर जी पधारेंगे। मेरा हाथ पकड़कर अपने साथ ले जाने के लिए ज़रूर आएँगे, तभी निकलूँगी मैं यहाँ से। उसके पहले आप (अपने भाई पुलकेसिन से कहकर) मुझे वापस भिजवा देने के लिए जितना भी प्रयास करें, मैं नहीं जाऊँगी। सम्मान के साथ पालकी पर बिठाकर भिजवा दें या हाथी पर बिठाकर—मैं बिलकुल न जाऊँगी।" (पृ. 723-724)

शिवकामी की इस शपथ को पढ़ते समय हमें *रामायण* में अशोक वन में सीताजी की शपथ का स्मरण आना स्वाभाविक है। तमिऴ के महाकवि कंबन के द्वारा इस दृश्य का वर्णन जिस प्रकार हुआ है, उसका अनुवाद यों है–

"सीमाहीन संसार जितने होते हैं इस विश्व में
सबको जला सकती हूँ मैं शाप के शब्द बोलकर,
पर वह विचार मैंने तज दिया जिससे
मलिन हो जाएगी मेरे स्वामी के धनुष की कीर्ति।"[1]

(सुंदर कांड, चूडामणि देने का प्रसंग)

इससे यह सिद्ध होता है कि *शिवकामियिन् शपथम* पर कंबरामायण का गहरा प्रभाव पड़ा है। घटनाओं का निर्माण और पात्रों की सृष्टि के समय कल्कि ने जगह-जगह *कंबरामायण* से प्रेरणा ली।

---

1. तुलना कीजिए : *वाल्मीकि रामायण*, सुंदर कांड 39: 29-30
बलैः समग्रैर्यदि मां रावणं जित्य संयुगे।
विजयी स्वपुरीं यायात् तन्मे तस्य यशस्करम्॥

शरैस्तु संकुलां कृत्वा लंकां परवलार्दनः।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थ-स्तत्तस्य सदृशं भवेत॥

2. उपन्यास के आरंभ में परंजोति (परमज्योति) नामक पात्र से जब हमारी भेंट होती है, तब उसे कांचीपुरम की ओर जाते हुए देखते हैं। वह एक सीधा-सादा युवक जैसा लगता है। उसका बदन गठीला है और चेहरा चमकदार। उसकी उम्र केवल अठारह साल की है।

उपन्यास के अंत तक आते-आते उसके चौथे भाग में हम देखते हैं कि वही युवक 'सिरु तोण्डर' (ईश्वर और भक्तों का अदना सेवक) नाम धारण करके आध्यात्मिक क्षेत्र में उच्च स्थान पर विराजमान है। इस दृष्टि से *शिवकामियिन् शपथम* अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर होनेवाले एक जिज्ञासु यात्री की प्रगति का चित्रण जैसा लगता है। यह उल्लेखनीय है कि कल्कि ने उपन्यास के इस प्रथम भाग का शीर्षक 'परंजोति की यात्रा' रखा है।

3. इस उपन्यास की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ कांचीपुरम और वातापि में ही घटित होती हैं। अतः इस उपन्यास को दो शहरों की कथा कहें तो अनुचित न होगा।

कथावस्तु का विन्यास

शिवकामियिन् शपथम उपन्यास में कल्कि के अपार सृजनात्मक कौशल का परिचय सर्वत्र मिलता है। उन्होंने एक विशाल कार्यक्षेत्र का निर्माण करके, उसमें जगह-जगह तरह-तरह के पात्रों को उपस्थित करके, घटनाओं का ताना-बाना बुनकर, हमारी विचार-शक्ति को प्रभावित करनेवाले दृश्यों की सृष्टि की है।

इन सब पर ध्यान देते हुए कल्कि ने कहीं भी किसी कसर के बिना शुरू से अंत तक सुव्यवस्थित और सुगठित रूप में कथावस्तु का सुंदर विन्यास किया है। उनका यह कौशल हमें आश्चर्यचकित कर देता है। इस उपन्यास की कथावस्तु के प्रवाह का अनुसरण करते बढ़ें, तो पता चलेगा कि उसमें एक भी घटना ऐसी नहीं है जो मुख्य कथा से जुड़ी न हो। *शिवकामियिन् शपथम* की कथावस्तु की चुस्त गठन की जितनी भी तारीफ़ करें, वह उचित ही होगा।

अमर पात्र

शिवकामियिन् शपथम में बड़ी संख्या में कथापात्रों की सृष्टि हुई है। उनमें कुछ सचमुच के ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, शेष काल्पनिक। चाहे कोई पात्र ऐतिहासिक हो या काल्पनिक, कल्कि की क़लम से जिन पात्रों की भी सृष्टि हुई, वे सब उनके उपन्यासों के पाठकों के मन में सदा के लिए बस गए हैं। फिर भी पात्रों की तुलना करने पर यह पता चलता है कि कल्कि ने अपने उपन्यासों में पल्लव कुल के शासक, चोलवंश के शाही परिवार के सदस्य आदि जितने ऐतिहासिक पात्रों की सृष्टि की है, उनसे भी बढ़कर उनके द्वारा चित्रित काल्पनिक पात्र पाठकों के मन में ज़्यादा स्थायी रूप से

प्रतिष्ठित हो गए हैं। काल्पनिक पात्रों को इतना जीवंत बनाने में कल्कि की प्रतिभा अत्यधिक सफल है।

तमिलनाडु में शिल्प-भंडार के लिए प्रसिद्ध महाबलिपुरम जाकर वहाँ की चट्टानों पर बनी मूर्तियों और आकृतियों का अवलोकन करनेवाले अगर पहले ही *शिवकामियिन् शपथम* पढ़ चुके हों, तो वे निश्चित रूप से पल्लव दरबार के शिल्पी आयनर और उनकी लाड़ली बेटी शिवकामी का स्मरण किए बिना नहीं रह सकते। वे उन दोनों पात्रों को ऐतिहासिक व्यक्ति ही मान लेते हैं। फिर वे उन जगहों को देखकर भावुक और हर्षित होते हैं, जहाँ उन पात्रों के रहने का उल्लेख कल्कि ने किया है। वे दर्शक महाबलिपुरम की मूर्तियों और गुफा मंदिरों का निर्माण करनेवाले पल्लव वंश के राजाओं को भी भूल जाते हैं और काल्पनिक पात्रों की प्रशंसा में तल्लीन हो जाते हैं।

शिवकामी के जीवन का अंत

पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में कल्कि के हुनर को सिद्ध करने के लिए केवल शिवकामी के चरित्र पर ध्यान देना काफ़ी है। उनके तीर-से ऐतिहासिक उपन्यास *पोन्नियिन् सेल्वन* में कथा-प्रवाह में कुछ जटिलताएँ आ गई हैं, लेकिन *शिवकामियिन् शपथम* की कथावस्तु में उतनी उलझन नहीं है।

शिवकामी का चरित्र-चित्रण अभूतपूर्व है। वह एक महाशिल्पी की पुत्री है। उसे नृत्यकला में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। उसका जीवन और विकास, उसे घेरनेवाली विपत्तियाँ और उसके संघर्ष, उसका लक्ष्य और उसकी शपथ आदि इस उपन्यास की गुणवत्ता को कई गुना बढ़ा देने की पर्याप्त क्षमता रखते हैं।

शिवकामी नृत्यकला में अद्बितीय है। परिस्थितिवश वह राजनीति के भँवर में फँस जाती है। फलस्वरूप उसका जीवन संघर्षमय हो उठता है और उसे अपार दुःख झेलना पड़ता है। उसको तड़पते देखकर पाठकों का दिल भी बेचैन होकर द्रवित हो उठता है। फिर भी, डॉ. मु. वरदराजन के शब्दों में, "हमेशा ऊँचा ही सोचकर, ऊँचा कार्य ही कर दिखानेवाली इस नायिका का जीवन पाठकों के मन को भी ऊँचा उठा देता है।"[1]

शिवकामी अपनी शपथ में सफल हुई, परंतु प्रेम में विफल, तब वह कांचीपुरम के अधिष्ठाता भगवान श्री एकांबरेश्वर[2] को अपने पतिदेव के रूप में वरण करके अपनी हार को जीत के रूप में परिवर्तित कर डालती है। कल्कि ने उपन्यास के अंत में अपने हर एक पात्र को जो फल प्रदान किया है, उन सबमें सर्वश्रेष्ठ परिणाम

---

1. *तमिल इलक्किय वरलारु*, पृ. 274
2. आम के पेड़ (चल वृक्ष) की छाया में विराजमान (सन्निधिवाले) शिवजी।

शिवकामी को सिद्ध होता है। शैव संत निरुनावुक्करसर की एक पंक्ति में जैसे कहा गया है, "नायिका समर्पित हुई नायक (शिवजी) के चरणों पर," उसी कामना को शिवकामी अपने जीवन का मनोरथ बना लेती है। अपने इस उदात्त निर्णय से वह पाठकों के हृदय-सिंहासन पर सदा के लिए विराजमान होने में सफल हो जाती है।

कली, मुकुल और फूल

कल्कि द्वारा ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के प्रथम प्रयास का परिणाम है *पार्तिबन् कनवु*। इसलिए इस रचना में उनकी सृजनात्मक प्रतिभा एकाकी रूप में थी। उसके बाद ही *शिवकामियिन् शपथम* लिखे जाने के कारण कल्कि की प्रतिभा इस उपन्यास में दुगुनी मात्रा में अभिव्यक्त हुई है। यानी, प्रतिभा की कली अब मुकुलित हो गई। फिर *पोन्नियिन् सेलवन* निकला, जिसमें कल्कि की प्रतिभा *शिवकामियिन् शपथम* से भी दुगुनी मात्रा में प्रकट हुई।

यानी, कल्कि की प्रतिभा की कली पूर्ण रूप से खिलकर सुगंध फैलाने लगी। इसकी कथावस्तु अत्यंत व्यापक होने के कारण अनजाने में एक-दो ग़लतियाँ इस उपन्यास में समाविष्ट हो गई हैं। मलेशिया विश्वविद्यालय के प्रोफ़सर ई. स. विश्वनाथन ने कथावस्तु के फैलाव की ओर इंगित किया है–

> "*पोन्नियिन् सेल्वन* में कथावस्तु का गठन चोल साम्राज्य जैसे ही विशाल पैमाने पर हुआ है। कथावस्तु में जो-जो उलझनें हैं, वे विजयालय चोलन काल से राजराज चोलन के काल तक फैले हुए चोल शासनकाल के इतिहास की भाँति जटिल बन गई हैं। उपन्यास की कथावस्तु चोल इतिहास के इस उतार-चढ़ाव के काल से ही संबंध रखती है।"[1]

दूसरी बात यह है कि इस उपन्यास का एक पात्र है वंदियतेवन। वह नायक न होकर केवल एक उप-पात्र है। सम्राट अरुलमोष़ि वर्मर ही प्रधान पात्र हैं। उनको ही उपन्यास का नाम *पोन्नियिन् सेल्वन* (कावेरी का सुपुत्र) सूचित करता है, लेकिन वंदियतेवन का चरित्र उसके वीरतापूर्ण कार्यों से धीरे-धीरे विकसित होने लगता है। फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व उपन्यास के प्रथम भाग पर छा जाता है। कल्कि स्वयं उसके चरित्र से इतना आकृष्ट हो गए हैं कि उपन्यास के द्वितीय भाग में उसे प्रधान पात्र मान लेते हैं और घोषित करते हैं कि हमारा नायक वंदियतेवन है। पात्र की सृष्टि की दृष्टि से यहाँ उपन्यासकार कल्कि पराजित हो गए हैं, परन्तु उनके द्वारा रचित पात्र की यह महान् विजय है।

---

1. *कट्टुरै मलर* (निबंध के फूल), पृ. 110.

इस उपन्यास में दो गुत्थियाँ अंत तक सुलझ नहीं पातीं। यह मालूम नहीं हो पाता कि नंदिनी नामक खलनायिका पात्र के पिता कौन हैं और आदित्य करिकालन नामक पात्र की हत्या किसके द्वारा हुई। ये दोनों प्रश्न उपन्यास के अंत तक अनुत्तरित रह जाते हैं। इस त्रुटि की ओर इशारा करते हुए प्रोफ़ेसर पूवण्णन कहते हैं कि इन दोनों त्रुटियों के रहते हुए *पोन्नियिन् सेल्वन* उस बुर्ज़ जैसा है, जिसके ऊपर कलश का अभाव है।[1]

लेकिन इस उपन्यास की जो ख़ूबियाँ हैं, उनसे तुलना करने पर ये छोटी-मोटी त्रुटियाँ उसी तरह ग़ायब हो जाती हैं, जैसे धूप में रखे दीए की रोशनी।

उपन्यास के छह नारी पात्र

पोन्नियिन् सेल्वन उपन्यास में छह नारी पात्रों का समावेश हुआ है। कल्कि ने हर एक नारी को सजीव ढंग से चित्रित किया है और हर एक को अलग-अलग और विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है। फिर भी इनके दो वर्ग बन सकते हैं। प्रथम कोटि के अंतर्गत ये नारियाँ आती हैं—1. चोल राज्य को सुदृढ़ और सुरक्षित रखने के लिए कटिबद्ध कुंदवै देवी, 2. चोल राज्य का नाश करने की योजनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करनेवाली सुंदरी नंदिनी और 3. कावेरी के सुपुत्र की उपाधि से प्रसिद्ध सम्राट की रक्षा करनेवाली गूँगी रानी मंदाकिनी।

दूसरी कोटि के नारी पात्र इस प्रकार हैं—1. सुरीली आवाज़वाली और लावण्यमयी समुद्रकुमारी पूंकुषलि, 2. प्रथम दृष्टि में ही आकर्षित होकर वंदियतेवन से प्रेम करनेवाली मासूम कन्या मणिमेखलै और 3. कुंदवै देवी की घनिष्ठतम सहेली वानती।

इन छह में कुंदवै, नंदिनी और मणिमेखलै वंदियवेतन से प्रेम करने लगती हैं। उनमें कुंदवै ही सफल होती है। नंदिनी अपनी इच्छा को जबरन कुचल डालती है। मणिमेखलै अपने प्रेम में अपने को ही घोल लेती है।

कुंदवै चोल राज्य के विस्तार के लिए योजनाओं की सृष्टि करनेवाली सूत्रधार बनती है। *शिवकामियिन् शपथम* के नागनंदी के समान इस उपन्यास में नंदिनी खलनायिका के रूप में सक्रिय रहती है। राजनीति के शतरंज में कुंदवै की जीत होती है और नंदिनी हार जाती है। दोनों अपार शक्ति-संपन्न नारियाँ हैं और दोनों दूसरों पर हुकूमत चलाना चाहती हैं। फिर भी दोनों में जो अंतर है, उसे कल्कि इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

> "अगर कोई व्यक्ति नरक में गिर पड़नेवाला हो, तो कुंदवै देवी उसको बीच में रोककर स्वर्ग में भिजवा देगी। वह इतनी ताक़तवाली है। जानते हैं ऐसी हालत

---

1. *कल्कियिन् वरलाट्रु नावलकल*, पृ. 139.

में नंदिनी क्या करेगी? उसकी ताक़त कुछ ज़्यादा ही है। वह नरक को ही ज़ोर देकर स्वर्ग घोषित करेगी और अपनी बात पर विश्वास पैदा होने देगी, तब वह व्यक्ति खुशी-खुशी नरक में कूद पड़ेगा।"[1]

उपन्यास के प्रथम भाग में पषुवूर (शहर) की कनिष्ठ रानी नंदिनी की मिठास-भरी वाणी की प्रशंसा उतने ही मीठे शब्दों में कल्कि इस प्रकार करते हैं—

"काशी नगर के रेशम की मृदुता, मद्यपान की मादकता, जंगली शहद की मिठास, वर्षाकाल की बिजली की चकाचौंध—क्या ये सब किसी नारी की कंठ-ध्वनि में घुली-मिली पाई जा सकती हैं? क्यों नहीं? इधर नंदिनी की वाणी में ये घुलमिल ही गई हैं।"[2]

हम इसी तरह कह सकते हैं कि रेशम की कोमलता, मधु का नशा, शहद की मिठास, बिजली की चमक, ये चारों विशेषताएँ नंदिनी की आवाज़मात्र में नहीं, बल्कि कल्कि की तमिष़ शैली में भी मिली-जुली रहती हैं।

अरुल्मोषि़ वर्मर का अपूर्व त्याग

'अरुल्मोषि़' सम्राट राजन के बचपन का नाम है। अरुल् का अर्थ है कृपा। अरुल्मोषि़वर्मर अपने नाम के अनुरूप कृपालु और दयालु हैं। सबकी दृष्टि में वे एक सज्जन पुरुष हैं। वे कोई भी कठिन कार्य पूरा कर दिखाने की क्षमता रखते हैं। माता-पिता, बंधु-बांधव, शत्रु-मित्र, प्रजा आदि सबके लिए वे प्रिय पात्र हैं। सबको उनके प्रति स्नेह और ममता है। अपनी दीदी कुंदवै के प्रति वे विशेष स्नेह रखते हैं। वे वंदियतेवन को प्राण-तुल्य मित्र मानते हैं। उनके सभी सुकर्मों और सद्‌गुणों के शिखर के रूप में उनके द्वारा सिंहासन त्याग को मान सकते हैं। वे अपने चाचा मधुरांतकर के लिए राजगद्दी छोड़ देने को तैयार होते हैं। चाचाजी के रहते वे सम्राट बनाना नहीं चाहते। मगर मधुरांतकर का शासक बनना किसी को भी रास नहीं आता। इस परिस्थिति में अरुल्मोषि़वर्मर शासक बनने के लिए सहमत होते हैं। राज्याभिषेक के समय वे जो भाषण देते हैं, वह उनके उच्च स्तरीय चिन्तन को, उन्नत लक्ष्य को स्पष्ट करता है। वे पूछते हैं—"अच्छा, अब यह राजमुकुट मेरी संपत्ति बन गया है न? अपनी संपत्ति का अपनी इच्छानुसार उपयोग करने का मुझे अधिकार है न?"[3]

---

1. *पोन्नियिन् सेल्वन्*, भाग 2, पृ. 204.
2. *पोन्नियिन् सेल्वन*, भाग 1, पृ. 160.
3. वही, भाग 5, पृ. 684

ऐसा कहते हुए अरुल्मोष़िवर्मर अचानक अपने चाचा मधुरांतकर के सिर पर चोल राज्य का मुकुट पहना देते हैं। अधिकारी वर्ग और दरबार में उपस्थित अन्य लोग उनके अनुपम त्याग की प्रशंसा करते हैं। इस त्याग के महत्त्व के बारे में कल्कि स्वयं इस उपन्यास के उपसंहार में इस प्रकार कहते हैं—

> "संसार के इतिहास में, काव्यों और पुराणों में भी इस मुकुट-त्याग के साथ तुलनीय किसी अन्य महान् घटना के होने की संभावना कम है। सम्राट अशोक के कलिंग-युद्ध न करने के निर्णय को अरुलमोष़िवर्मर के त्याग के समकक्ष मान सकते हैं।
>
> "अरुल्मोष़िवर्मर का यह अतुलनीय त्याग ही *पोन्नियिन् सेल्वन* की कथा में चरमसीमा की घटना है। कथावस्तु से संबंधित सभी गतिविधियाँ इस उदात्त घटना की ओर ही अग्रसर होती हैं।"[1]

कल्कि ने उपन्यास में इस भाग का शीर्षक *त्याग-शिखरम* रखा है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

कल्कि हमें पाठ पढ़ने नहीं देते!

जब *पोन्नियिन् सेलवन* धारावाहिक रूप में *कल्कि* पत्रिका में निकल रहा था, उस समय एक दिलचस्प घटना घटी। उन दिनों कल्कि एक बार विष्णुपुरम शहर गए। वहाँ महात्मा गाँधी पाठशाला में उनका भव्य स्वागत किया गया। छात्रों की ओर से उनको एक अभिनंदन पत्र भी भेंट किया गया। उसमें हास्य का पुट देकर शिकायत-सी ये पंक्तियाँ जोड़ दी गईं—

> "पोन्नियिन् सेल्वन और पूंकुषिलि देवी जी,
> वंदियतेवन, वानती और कुंदवै,
> पषुवूर नंदिनी, पषुवेट्टरैयर वंश के लोग,
> याद में आकर हमें तंग करते हैं बहुत,
> जब कभी हम पाठ पढ़ने को बैठते हैं।"[2]

इन पंक्तियों से यह सिद्ध होता है कि समाज के सभी पक्षों के लोगों के बीच में, यहाँ तक कि स्कूल के छात्रों के बीच में भी *पोन्नियिन् सेल्वन* प्रसिद्ध बन गया था।

अब हम कल्कि के सामाजिक उपन्यासों की विशेषताओं और महत्त्व पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे।

1-2. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 731.

अलै ओसै (लहरों की आवाज़)

कल्कि के सामाजिक उपन्यासों की शृंखला में उनकी विशिष्टता की सशक्त और गहरी छाप *अलै ओसै* पर पड़ी है। इस कृति को साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ, जो भारतीय साहित्य के क्षेत्र में सर्वोच्च सम्मान माना जाता है। एक उल्लेखनीय घटना यह भी हुई कि जब 1964 में रूसी भाषा में इसका अनुवाद निकला, तब चार दिनों में इसकी हज़ारों प्रतियाँ बिक गईं। सबसे बढ़कर, कल्कि के मन में *अलै ओसै* को एक विशेष स्थान प्राप्त था।

कालजयी रचना

कल्कि *अलै ओसै* को ही अपनी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ और दीर्घकाल तक स्थायी रहने की योग्यता प्राप्त उपन्यास मानते हैं। उन्होंने इस उपन्यास की भूमिका में स्वीकारोक्ति के रूप में लिखा है–

> "इस (धारावाहिक) उपन्यास को (पुस्तक के रूप में) पढ़ते समय मेरे मन में यह विचार अनायास ही उदित हुआ कि मैंने जो भी पुस्तकें लिखी हैं, उनमें यदि कोई ऐसी पुस्तक हो जो पचास या सौ साल तक स्थायी रहने की योग्यता रखती है, तो वह 'अलै ओसै' ही होगा।" (पृ. vii-viii)

> "इस *अलै ओसै* उपन्यास को मैं बड़ी विनम्रता और बड़े आनंद के साथ तमिष़ लोगों को अर्पित करता हूँ। लगभग तीस वर्षों से तमिष़ भाषा रूपी माँ की सेवा में ही सभक्ति जो-जो रचनाएँ में लिखता आया हूँ, उनमें यह उपन्यास ही सर्वश्रेष्ठ है। इस दृढ़ धारणा के साथ मैं सहृदय पाठकों को यह उपन्यास समर्पित करता हूँ।" (पृ. x-xi)

पात्रों ने ही उपन्यास लिख डाला!

कल्कि कभी यह नहीं मानते थे कि उन्होंने खुद यह उपन्यास लिखा। उनका गहरा विश्वास था कि इस उपन्यास की कहानी को उसमें आनेवाले पात्रों ने ही आपस में बातें करने की शैली में लिख डाला है। उपन्यास के प्राक्कथन में वे कहते हैं–

> "मैं यह सोच तक नहीं पाता कि *अलै ओसै* को मैंने ही लिखा। इसके पात्र ललिता, सीता, धारिणी, सूर्या, सौंदर राघवन, पट्टाभि रामन आदि ने आपस में बातें करते हुए अपने मन की आशाओं, अभिलाषाओं और आवेशों को प्रकट करने के बहाने *अलै ओसै* को लिख डाला। मैं यह भी सोच नहीं पाता कि वे सब कल्पना-प्रसूत पात्र हैं। मुझे लगता है कि वे पात्र भी हमारे जैसे ही पैदा

हुए, उम्र के साथ-साथ बड़े हुए, जीवन के सुख-दुखों के अनुभवों से प्रभावित हुए। सिर्फ़ बेचारी सीता, माता कस्तूरबा गाँधी के पद-चिह्नों को ढूँढ़कर चली गई। बाक़ी लोग अभी जीवित ही हैं। पता नहीं मैं कब और कहाँ उनसे दुबारा मिल पाऊँगा।" (पृ. viii)

अपने काल्पनिक पात्रों के प्रति भी कल्कि को बड़ा लगाव था, अपार ममता थी।

इतिहास और गाँधीवाद की पृष्ठभूमि

अलै ओसै की कथावस्तु की पृष्ठभूमि में हम समकालीन इतिहास और गाँधीवाद को सुंदर और अद्भुत ढंग से परस्पर हाथ मिलाते हुए देख पाते हैं। डॉ. सिर्पी बालसुब्रह्मण्यम कहते हैं—"अलै ओसै को हम कल्कि के लेखन कौशल, उनकी ऐतिहासिक चेतना और गाँधीवाद के प्रति उनकी अटल अनुरक्ति—इन तीनों के स्मारक के रूप में निर्मित उपन्यास मान सकते हैं।"[1]

भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के आख़िरी अठारह वर्षों के इतिहास को कल्कि ने इस उपन्यास की कथावस्तु की पृष्ठभूमि के रूप में लिया है। सन् 1930 से 1947 तक हमारी मातृभूमि के इतिहास में जो-जो आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित हुईं, उन्हें कल्कि ने इस उपन्यास में दर्ज किया है। विशेष रूप से गाँधीजी की आत्मशक्ति ने करोड़ों लोगों के दिल पर जो शासन किया था और जिसके फलस्वरूप जनमानस के बाहरी एवं आंतरिक जीवन में जो-जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, उन सबका उपयोग कल्कि ने *अलै ओसै* के लिए पार्श्व संगीत के समान किया है।

इसके अलावा जब करोड़ों लोगों का स्वप्न सच होकर भारत आज़ाद हुआ, तब गाँधीजी की आत्मशक्ति के विरुद्ध नाशकारी शक्तियों ने सिर उठाकर सर्वत्र हाहाकार मचाते हुए क़त्ले-आम का जो भयंकर तांडव उपस्थित किया, उसे भी तथा अंत में गाँधीजी की आत्मशक्ति ने जिस तरह उन विनाशकारी शक्तियों को छिन्न-भिन्न कर विजय का शंख बजा दिया, उसे भी और इस तरह की अन्य घटनाओं को कल्कि ने कथावस्तु की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया।

इस सिलसिले में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने दिल्ली, पानीपत, करनाल, कुरुक्षेत्र आदि शहरों में जाकर वहाँ शिविरों में ठहरे हुए पंजाब के शरणार्थियों की हालत को खुद देखा और समझा। फलतः वे अपना संपूर्ण हृदय लगाकर उन शरणार्थियों की दयनीय दशा का वर्णन करके पाठकों के अंतःकरण को स्पर्श कर सके।

---

1. 'अलै ओसै', पृ. 13.

कल्कि के रचना कौशल के बारे में शोध करके डॉ ता. वे. वीरासामी ने विस्तार से यह दिखाया है कि *अलै ओसै* शीर्षक, उपन्यास के भागों के शीर्षक, अध्यायों के शीर्षक, कथापात्रों से संबंधित जगहें आदि समकालीन इतिहास से ताल्लुक़ रखे हुए हैं। उनका कहना है–

> "इस उपन्यास के कुछ भागों के नाम भूकंप, तूफ़ान, ज्वालामुखी, प्रलय आदि रखे हुए हैं। ये नाम प्राकृतिक विपत्तियों के अलावा देश के इतिहास में घटित कुछ भयंकर घटनाओं को भी सूचित करते हैं। बिहार में जो भयंकर भूकंप हुआ उसका स्मरण, सदियों से प्रचलित रूढ़ियों को हिला देनेवाले क्रांतिकारी विचारों के तूफ़ान का चलना, बंगाल और बिहार में सांप्रदायिकता को ज्वालामुखी का फटना और उससे महाविनाश रूपी अग्नि के लावा का उमड़ना, विदेशी शासन की समाप्ति, गाँधीजी का निधन, उसके साथ इन तमाम भयंकर घटनाओं के प्रलय जैसे इतिहास के प्रवाह का थम जाना–इन सबके प्रतीक के रूप में भागों व अध्यायों के शीर्षक पाए जाते हैं।"[1]

बिहार में जो भयंकर भूकंप आया, उसके वर्णन से *अलै ओसै* का प्रथम भाग शुरू होता है। गाँधीजी की मृत्यु पर देश के अनाथ हो जाने के उल्लेख के साथ उपन्यास समाप्त होता है। घटना-काल पर ध्यान दें, तो पता चलेगा कि कल्कि ने इस उपन्यास में समकालीन इतिहास को पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित करने के प्रयास को प्रथम स्थान दिया है। यही कारण है कि विद्वान लोग *अलै ओसै* को समकालीन इतिहास की पृष्ठभूमि पर रचित ऐतिहासिक उपन्यास पुकारते हैं।

इस उपन्यास के कथा-प्रवाह में जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, बाबू राजेन्द्र प्रसाद आदि राष्ट्रीय स्तर के अनेक नेता बीच-बीच में प्रवेश करते हैं। उनमें गाँधीजी को उच्च स्थान, *प्रथम स्थान* प्राप्त हुआ है। उपन्यास के आरंभ में आनेवाला डाकिया बालकृष्णन अपने को कुशल समाचार वाहक के रूप में देखता है। वह उपन्यास के अंत में भी आता है। तब वह अत्यधिक विरक्ति के साथ कहता है–"गोली मारकर महात्मा गाँधीजी की हत्या कर दी गई। अब चाहे कोई कुशल रहे या न रहे, मुझे कोई परवाह नहीं है।" (पृ. 863)

उपन्यास की नायिका सीता बीच में पूर्ण रूप से बधिर हो जाती है। वह कानों से कुछ नहीं सुन पाती, लेकिन गाँधीजी के पवित्र शरीर के अंत्येष्टि के दिन सीता को अचानक दुबारा सुनाई पड़ने लगता है। उसके कानों में सबसे पहले 'हरि, तुम हरो जन की पीर' गीत ही सुनाई पड़ता है, जो गाँधीजी को सर्वाधिक प्रिय गीत था। (पृ. 868)

---

1. *कल्कि-अखिलन पडैप्पु कलै* (कल्कि और अखिलन दोनों की रचनात्मक कला), पृ. 25.

सूर्या नामक पात्र पहले समाजवादी विचारधारा रखता था। कालांतर में उसका मन बदल जाता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि गाँधीवाद के द्वारा ही देश का उद्धार हो सकता है। वह विश्वास के साथ कहता है–"महात्माजी के महान् बलिदान के बाद देश का भविष्य सुरक्षित है। आगे इस विशाल देश में कोई भारी दुर्घटना नहीं होगी। संपन्नता और उन्नति की संभावना ही रहेगी।"

उपन्यास की अंतिम पंक्ति के रूप में कल्कि जोड़ते हैं, "उस देशभक्त त्यागी की मनोकामना पूर्ण रूप में सफल हो जाए।" (पृ. 868)

परंतु कल्कि यथार्थ से मुँह मोड़नेवाले लेखक नहीं थे। जहाँ उन्होंने एक ओर गाँधीजी और उनके विचारों की अत्यधिक प्रशंसा करनेवाले पात्रों की सृष्टि की है, वहाँ गाधीवाद के ख़िलाफ़ बोलनेवाले राघवन नामक पात्र का भी समावेश किया है। राघवन शुरू से अंत तक गाँधीवाद से नफ़रत करता है। वह कहता है–"अगर भारत को गाँधीजी के बताए रास्ते पर चलने दें, तो देश में सब के सब भिखमंगे ही बनकर रहेंगे। अपने-अपने हाथ में खप्पर उठाकर भीख माँगने की हालत में पहुँच जाएँगे। जब तक भारत पर गाँधीजी का प्रभाव छाया रहता है, तब तक वह निकम्मा और बेकार देश के रूप में बना रहेगा।" (पृ. 220)

इस राघवन को छोड़कर इस उपन्यास में आनेवाले अन्य सभी पात्र गाँधीजी को महापुरुष, अवतार पुरुष और ईश्वर का अंश पुकारकर उनकी वंदना करते हैं; इस प्रकार *अलै ओसै* में शुरू से अंत तक राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास से संबंधित घटनाएँ तथा भारत के पिता तुल्य गाँधीजी के विचार उपन्यास की पृष्ठभूमि के समान सक्रिय रहते हैं।

भावों की टकराहट

डॉ. रामलिंगम अपनी पुस्तक *पुनैकथै वलम* में लिखते हैं, "ऐसा कहना समीचीन होगा कि गाँधीवाद को रंग बनाकर, एक हिन्दू परिवार को चित्र बनाने का परदा जैसा मानकर, कल्कि ने जो रंगबिरंगा बढ़िया चित्र खींचा था, वही है *अलै ओसै* उपन्यास।" (पृ. 25)

उपन्यास की नायिका सीता के सद्गुण और सरल जीवन को जिस ढंग से कल्कि ने चित्रित किया है, उससे उपर्युक्त उक्ति की सार्थकता को हम समझ सकते हैं। 'जैसी माँ वैसी बेटी' वाली उक्ति को सत्य सिद्ध करते हुए अपनी माँ राजम्माल का अनुसरण करके सीता भी गाँधीजी को ईश्वर का अंश मानकर उनके प्रति अपार श्रद्धा रखती है। अपने सामने कोई गाँधीजी की निन्दा करे, तो उसे वह सहन नहीं कर पाती, चाहे वह व्यक्ति उसका पति ही क्यों न हो।

सागर की लहरों के जैसे सीता के जीवन में समय-समय पर सुख, दुःख, संदेह, ममता, स्नेह आदि की तरंगें उठती रहती हैं। भारत की उत्तरी सीमा से दक्षिणी सीमा तक चेन्नै, दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, लाहौर आदि शहरों में वह घूमती है। वह अपने एक मात्र संगी-साथी के रूप में गाँधीवाद को चुन लेती है। जीवन में सीता की सबसे बड़ी और अंतिम कामना यह थी कि कस्तूरबा गाँधी के समान खुद भी अपने पति को गोद में लेटे हुए अपनी आख़िरी साँस छोड़े। कल्कि यह दिखाते हैं कि सीता की मनोकामना पूर्ण हो जाती है। इतना ही नहीं, कल्कि यह भी जोड़ते हैं कि जिस दिन गाँधीजी की आत्मा अपनी स्वर्ग यात्रा शुरू करती है, उसी दिन सीता की आत्मा भी उसके शरीर को छोड़कर उधर की ओर गमन करती है। जीवित रहते समय सीता ने अपने शरीर की आँखों से गाँधीजी को कभी देखा नहीं था, लेकिन अब उसकी आत्मा को स्वर्ग की तरफ़ उड़ते समय यह देखने का सौभाग्य मिलता है कि गाँधीजी की आत्मा की ज्योति आकाश पर बिजली के समान दमक उठकर करोड़ों सूर्यों के समान चमकने लगी। अंत में कल्कि कहते हैं कि गाँधीजी के पार्थिव शरीर की अंतिम यात्रा का दुखद दृश्य ही सीता के कानों में सदा सुनाई पड़नेवाली लहरों की आवाज़ के समाप्त होने के कारण बनता है।

इस प्रकार *अलै ओसै* भारतीय इतिहास रूपी महासमुद्र में 1930 से 1947 तक के अठारह वर्षों की उथल-पुथल का चित्रण प्रस्तुत करता है। इसके अलावा, यह उपन्यास एक विवाहित हिन्दू नारी के दांपत्य जीवन में परस्पर टकरानेवाली जो भावनाएँ उठीं, उनका भी घटना-स्थल बन गया है।

दो मोड़

अलै ओसै से कम गंभीर और आकार में छोटे सामाजिक उपन्यासों में *कल्वनिन् कादलि* (डाकू की प्रियतमा, 1937-38) और *त्यागभूमि* (1939), ज़िक्र करने योग्य हैं। इन उपन्यासों ने तमिष़ सामाजिक उपन्यासों के इतिहास में दो नए मोड़ उपस्थित कर दिए।

कल्वनिन् कादलि

कल्कि के उपन्यासों में इस उपन्यास का अनुवाद ही पहले पहल हिन्दी में हुआ।[1] इसका घटना-स्थल पूंकुलम नामक गाँव है, जो वास्तव में पुत्तमंगलम गाँव का प्रतिरूप है, जहाँ कल्कि का जन्म हुआ था। उनके जन्मस्थान के आसपास के गाँवों में कदिर्वेलु नामक डाकू अचानक घुसकर डकैती करता था। वह डाकू ही *कल्वनिन्*

---

1. *चोर की प्रेमिका*, (1953), अनुवादक : पूर्णम सोमसुंदरम

कादलि के नायक मुत्तैयन पात्र की सृष्टि का प्रेरणास्रोत बन गया। इस प्रकार कल्कि ने अपने जन्मस्थान को ही घटना-स्थल का रूप देकर एक असली डाकू को उपन्यास के नायक के रूप में चित्रित किया। इन दो कारणों से यह उपन्यास एक अत्यंत सफल यथार्थवादी उपन्यास बन गया।

समाज का दुश्मन बने हुए एक पात्र को अपने उपन्यास के नायक के रूप में चित्रित करते हुए कल्कि यह क्रमशः दिखाते हैं कि नायक के डाकू बनने का कारण उसके आसपास का समाज ही है। पुलिस विभाग का फ़र्ज़ है अपराधियों को पकड़ना और उनको ठीक रास्ते पर लाना, लेकिन यह विभाग कभी-कभी निर्दोष व्यक्ति को भी दंडित कर देता है और जेल में डाल देता है। ऐसी ही ग़लती से मुत्तैरान दंडित होता है और बदला लेने के लिए डाकू बन जाता हैं, उसकी प्रेमिका कल्याणी को एक वृद्ध से विवाह कर लेना पड़ता है। वह जल्दी ही विधवा हो जाती है। मुत्तैय्यन-कल्याणी का परस्पर प्रेम स्थायी रहता है, लेकिन वह सफल नहीं होता। मुत्तैयन अपनी बहिन से भी अपार स्नेह करता है।

फलतः, जीविका की तलाश में निकल पड़नेवाले निरीह युवक मुत्तैयन के जीवन में कई कटु अनुभव उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण उसके जीवन की दिशा बदल जाती है।

कल्वनिन् कादलि उपन्यास में कल्कि इस कटु सत्य को अच्छी तरह समझाते हैं कि जो लोग वास्तव में अपराधी हैं, उनमें कई व्यक्ति जेल जाने से बच जाते हैं और बाहर समाज में मौज उड़ाते हुए घूम रहे हैं, लेकिन कभी-कभी बिलकुल निर्दोष व्यक्ति ग़लती से क़ानून से शिकंजे में फँस जाते हैं। उनका जीवन हमेशा के लिए बरबाद हो जाता है।

त्यागभूमि

कल्वनिन् कादलि पूराकरने के बाद कल्कि ने *आनंद विकटन* पत्रिका में धारावाहिक रूप में *त्यागभूमि* उपन्यास लिखा। इसकी भूमिका डॉ. सुब्बरायन ने लिखी। उसमें वे कहते हैं, "कथावस्तु की रोचकता, शैली की सुंदरता प्रतिपादित विषय की भव्यता, इन तीनों बातों में 'त्यागभूमि' उपन्यास उसके पहले कल्कि द्वारा लिखित अन्य उपन्यासों को मात कर गया है।" (पृ. vii)

त्यागभूमि एक उन्नत लक्ष्य को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसका प्रधान उद्देश्य यह दिखाना है कि हमारे देश में स्त्रियों को प्राप्त स्वतंत्रता कितनी सीमित है और उसका विस्तार कैसे करना चाहिए।

इस उपन्यास की नायिका सावित्री बचपन से सौतेली माँ के अत्याचार का शिकार बनती है। विवाह के बाद उसे अपनी सास का अत्याचार सहना पड़ता है।

उसका पति श्रीधरन उसके दिल की हालत समझ नहीं पाता और वह बेपरवाह रहता है। वह अपनी माँ के हाथ की कठपुतली के समान व्यवहार करता है। सावित्री का आठवाँ महीना चल रहा था। ससुरालवाले उसे कोलकाता से अकेले ही मायके को भेज देते हैं। वहाँ केवल उसके पिताजी जीवित हैं। वे भी जीविका के लिए गाँव छोड़कर चेन्नै चले जाते हैं। जब सावित्री लौट रही थी, तब रास्ते में उसकी पेटी चोरी हो जाती है। गाँव में पिताजी को न पाकर उनको ढूँढ़ने के लिए वह भी चेन्नै पहुँच जाती है। बहुत घूमने के बाद वह अंत में पूछताछ करने के लिए पुलिस स्टेशन में जाती है, तब प्रसव वेदना होने से वह अस्पताल में पहुँचा दी जाती है। उसकी एक बच्ची पैदा होती है।

सावित्री बच्ची को भी साथ लेकर आत्महत्या कर लेना चाहती है। तब उसे अपने पिताजी के ठिकाने का पता चल जाता है। वह अपने को छिपाकर वहाँ पहुँचती है। बच्ची को पिताजी के नज़दीक छोड़कर नौकरी की तलाश में मुंबई चली जाती है। परिस्थितिवश वहाँ वह बड़ी जायदाद की मालकिन हो जाती है।

कुछ समय बाद सावित्री चेन्नै को वापस आ जाती है। उसे अपनी बेटी चारुमति का भी पता चल जाता है, लेकिन वह चारु को अपने साथ ले जाकर उसका पालन-पोषण नहीं कर पाती। कुछ क़ानूनी रुकावटें हैं, वह बड़ी हिम्मत के साथ अपने पति के विरुद्ध मुक़द्दमा चलाकर उससे तलाक़ माँगती है।

तलाक़ के मामलों में हमेशा पति को ही पत्नी के भरण-पोषण का ख़र्च देना पड़ता है, लेकिन *त्यागभूमि* की सावित्री घोषित करती है कि तलाक़ मिलने के बाद वह अपनी पति को एक निश्चित रक़म नियमित रूप से अदा करती रहेगी।

वह न्यायालय में तैश में आकर ज़ोर-ज़ोर से कहती है–"जब पति तलाक़ माँगता है, तब पत्नी उसे किस बात के लिए बाध्य कर सकती है? भरण-पोषण देने के लिए ही तो मजबूर कर सकती है। यहाँ उलटे मैं तलाक़ माँग रही हूँ। मैं इस व्यक्ति के साथ जीवन चलाने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं कभी इनके साथ नहीं रहूँगी। इसलिए मैं इनको भरण-पोषण की रक़म देने को तैयार हूँ।" (पृ. 354)

सावित्री की इस घोषणा से पता चलता है कि भारतीय नारी-जगत में अपने हक़ के प्रति 1939-40 में ही जागरूकता पैदा हो गई थी। उस ज़माने में ही कल्कि ने इस उपन्यास में एक स्त्री पात्र को इतनी निडरता के साथ न्यायालय में भीड़ के सामने बोलते हुए चित्रित किया है। इससे स्पष्ट है कि कल्कि अपने लेखन के द्वारा समाज सुधार के कार्य को गंभीरतापूर्वक लेते थे।

उपन्यास के अंत में हम देखते हैं कि जो काम न्यायालय के लिए संभव नहीं हो सका, वह देश-सेवा के द्वारा सध जाता है। तलाक़ के लिए अदालत की अनुमति

न मिलने की स्थिति में श्रीधर और सावित्री का मन बदल जाता है। दोनों स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर देश की ख़ातिर जेल जाते हैं। अभी तक वे उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव जैसे एक-दूसरे से अलग रहते थे, देश के लिए सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेते समय उनके हृदयों का संगम हो जाता है। सत्याग्रहियों के अलग-अलग जत्थे में एक-दूसरे को देखकर वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं। इस समय का वर्णन कल्कि निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं–

> "हम ऐसा कह सकते हैं कि उसी क्षण श्रीधरन और सावित्री का पुनर्विवाह संपन्न हुआ। वैसे तो बहुत पहले ही बड़ों-बुज़ुर्गों के दबाव से शारीरिक दृष्टि से उनका विवाह हो चुका था। आज के शुभ दिन दोनों की आत्माएँ एक-दूसरे के साथ विवाह-सूत्र में बँध गईं। भारतमाता और महात्मा गाँधी इन देशभक्तों की आत्माओं के इस विवाह के साक्षी जैसे बन गए।" (पृ. 401)

और एक सुधार की बात यह है कि इस उपन्यास में सावित्री के पिताजी शंभु शास्त्री के माध्यम से अस्पृश्यता के अन्याय के विरुद्ध कल्कि ने आवाज़ उठाई है। गाँव में बाढ़ के समय शंभु शास्त्री हरिजनों को अपनी गोशाला में ठहरा देते हैं। इसे पाप कर्म मानकर उनको जाति से निकाल दिया जाता है। फिर वे चेन्नै पहुँचते हैं, जहाँ उनको एक गंदी बस्ती में ही ठहरने को जगह मिलती है। वे वहाँ रहनेवालों की सेवा करके उनके जीवन-स्तर को ऊँचा बना देते हैं।

स्वतंत्रता के लिए प्यासा युवक

कल्कि के *सोलैमलै इलवरसि* (सोलैमलै प्रदेश की राजकुमारी) उपन्यास में दो भिन्न कथाओं का सम्मिश्रण है। इसमें वर्तमान से संबंधित एक कथा है और अतीत से संबंधित एक अन्य कथा है। कल्कि बारी-बारी से इन कथाओं को सुनाते हैं।

कुमारलिंगम एक क्रांतिकारी है, जो 1942 वाले सत्याग्रह में भाग लेता है। वह पुलिस से बच निकलने के बाद इरादे से सोलैमलै नामक पहाड़ी प्रदेश में छिप जाता हैं, वहाँ जीर्ण-शीर्ण और खंडहर बने एक पुराने महल में लेटे हुए रात बिताता है। उस अप्रीतिकर वातावरण में उसके मन में कुछ अजीब अनुभवों की यादें सिर उठाती हैं।

कुमारलिंगम यह निश्चय नहीं कर पाता कि वे यादें स्वप्न के दृश्य हैं या कल्पना की उपज हैं या पूर्वजन्म की बातें हैं। उसे ऐसा अहसास होता है कि वे अनुभव बाहर यथार्थ की दुनिया में होनेवाली घटनाओं से बढ़कर ज़्यादा वास्तविक लगते हैं। इस प्रकार पूर्वजन्म की यादों को स्वतंत्रता आंदोलन के समय की घटनाओं के साथ गूँथकर कल्कि ने इस उपन्यास की कथा को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। नए प्रकार की यह कथावस्तु कल्कि के कल्पना-कौशल का एक अच्छा उदाहरण है।

कुमारलिंगम देश को स्वतंत्र बनाने के लिए संघर्ष करनेवाला बहादुर युवक है। वह हमेशा देश की सेवा में लगा रहता है। निम्नलिखित संक्षिप्त वार्तालाप में वह अपने लक्ष्य को स्पष्ट करता है। उसे हमेशा घूमते-भटकते देखकर कोई आदमी उससे पूछता है—

"भई, क्या तुम्हारा कोई मकान-ठिकाना नहीं होता? करने के लिए तुम्हारे पास कोई काम-धंधा नहीं होता?'

"मैं पहले ही आपको बता चुका हूँ कि देश की सेवा करना ही मेरा काम है, पेशा है, सब कुछ है।" (पृ. 53)

स्वतंत्रता आंदोलन के समय जिस प्रकार चल रहा था, उसको चित्रित करने के लिए कल्कि ने *सोलैमलै इलवरिस* के समान ही और एक उपन्यास लिखा। *मुकुटपति* नामक इस उपन्यास में भी कल्कि नायक के रूप में एक देशभक्त युवक को ही चित्रित करते हैं। वह भी भारतमाता को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए संघर्ष करता है। वह गाँधीजी की आत्मिक शक्ति को मान लेता है और उसकी उपासना करता है।

यह उपन्यास *लघु कल्कि* में धारावाहिक रूप में निकलता था। यह पत्रिका राजाजी के विचारों का समर्थन करने और उनके लिए समर्थन जुटाने के उद्देश्य से सप्ताह में दो बार प्रकाशित होती थी। इस उपन्यास में कल्कि ने नशाबंदी की नीति को मुख्य विषय के रूप में वर्णित किया है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त कल्कि ने निम्नलिखित सामाजिक उपन्यास भी लिखे थे—

1. *मोहिनी तीवु* (मोहिनी द्वीप)—जवाहरलाल नेहरू की विश्व-शांति की नीति पर आधारित कृति।
2. *देवकियिन् कणवन* (देवकी का पति)—देवकी नामक पात्र के रोचक जीवन को चित्रित करता है।
3. *पोयमान् करडु* (अंदर हिरण होने का आभास देनेवाली गुफ़ा)—तिरुचेंगोडु शहर में गाँधी आश्रम में नौकरी करते समय जिन व्यक्तियों से कल्कि परिचित हुए, उनको लेकर लिखित उपन्यास।
4. *अबलैयिन् कण्णीर* (अबला के आँसू)—गाँधीवाद के अनुयायी शिवराजन नामक युवक के जीवन की कहानी।

ये उपन्यास *कल्कि* पत्रिका में धारावाहिक रूप में 1949, 1950 में प्रकाशित हुए। फिर कल्कि का *अमरतारा* नामक उपन्यास उनकी पत्रिका के सितंबर 5, 1954 के अंक से निकलने लगा, लेकिन दिसंबर 5, 1954 को कल्कि का देहावसान हो गया।

अध्याय 26 तक वह उपन्यास पहुँचकर रुक गया। सौभाग्य से कल्कि इस उपन्यास से संबंधित कुछ लिखित संकेत छोड़कर गए थे। उनके आधार पर कल्कि की पुत्री आनंदी ने *अमरतारा* उपन्यास को पूरा कर दिया।

कल्कि के निधन के बाद उनका लिखा एक पुराना उपन्यास कहीं से प्राप्त हुआ। उसका नाम है *अरुंबु अंबुकल* (कलिया रूपी तीर)। यह 1976 में *कल्कि* पत्रिका में धारावाहिक रूप में निकला। पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन 1998 में हुआ।

यह सच है कि कल्कि ने कहानी, लेख, उपन्यास, रेखाचित्र, अनुवाद, यात्रा-विवरण, जीवनियाँ आदि विविध विधाओं में कई कृतियों की रचना की थी। फिर भी 'कल्कि' कहते ही उनके उपन्यास ही अन्य सभी तरह की कृतियों को लाँघकर याद में आते हैं। हम यह भी जोड़ सकते हैं कि उन उपन्यासों में *शिवकामियिन् शपथम, अलै ओसै* और *पोन्नियिन सेल्वन* लेखक कल्कि की शानदार यादगारों के रूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं।

4

निबंधकार कल्कि

"सरलता, स्पष्टता, मिठास, हास्य का पुट, कल्पना का लालित्य आदि के मिश्रण से बनी रोचक गद्य शैली को कल्कि रा. कृष्णमूर्ति ने अभ्यास करके अपनाया था।"

—वाल्लिकण्णन[1]

प्रसिद्ध तमिष़ विद्वान डॉ. न. संजीवी ने काव्य और गद्य की तुलना करते हुए इस प्रकार लिखा है—"साहित्य-कला के प्राण अगर काव्य हो, तो उसका मन गद्य है। जब निबंध रूपी मन प्राणों से समन्वित होता है, तब कविता का उदय होता है। निबंध रूपी मयूर जब अपने पंखों को खोलकर नृत्य की अवस्था में पहुँचता है, तब वहाँ कविता दृश्यमान होती है। नीलाकाश को सुशोभित करनेवाले सूर्य और चंद्र के समान साहित्याकाश को सौन्दर्य से मंडित कर देनेवाले दो प्रकाश-पुंज निबंध और कविता है। यह निश्चित है कि भविष्य में परिष्कृत भाषा रूपी कटोरा, साहित्यिक रस रूपी घी, सरल-सहज रूपी बत्ती और चिन्तन रूपी लौ का उपयोग करके तमिष़ निबंध रूपी दीपक प्रज्वलित हो उठेगा।"[2]

डॉ. संजीवी के कथनानुसार एक अच्छे निबंध के लिए आवश्यक चार तत्त्व इस प्रकार हैं—परिष्कृत भाषा, साहित्यिक आनंद देने की क्षमता, सरल-सहज शैली और चिन्तन की संपन्नता। एक कुशल निबंधकार इन चारों तत्त्वों का प्रयोग अपने लेखों में करेगा। इस कसौटी के आधार पर हम देखेंगे कि कल्कि के निबंधों में उपर्युक्त लक्षणों का कितना सफल प्रयोग हुआ है।

निबंधकार कल्कि

कल्कि के निबंधों में प्राप्त विशेषताओं का विश्लेषण करने के पहले यह देखना आवश्यक है कि कल्कि को एक निबंधकार के रूप में किस हद तक तमिष़ लोग

1. *भारतिक्कु पिन् तमिल उरैनडै* (भारती के पश्चात् तमिल गद्य), पृ. 70.
2. *आरायुचि कट्टुरैगल* (शोधपरक निबंध), भाग 1, पृ. 138.

जानते हैं। महाकवि भारती को लें, तो उन्हें कवि के रूप में तमिष़भाषी लोग जितना जानते हैं, उतना कहानीकार के रूप में नहीं। एक क़दम आगे बढ़कर यह भी जोड़ सकते हैं कि तमिष़ लोग भारती को कहानीकार के रूप में जितना जानते हैं (चाहे वह जितना भी कम हो), उतना भी एक निबंधकार के रूप में नहीं।

कल्कि के साथ भी यही हुआ। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। लेखक के रूप में उनके अवतार बहुत थे। वे एक साथ कहानीकार, उपन्यासकार, पत्रकार, गीतकार, हास्य लेखक, समीक्षक, स्वतंत्रता की लड़ाई में एक सिपाही इत्यादि रूप निबाहते आ रहे थे, लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ही वे अत्यधिक लोकप्रिय हुए। उनका यह रूप ही पाठकों के जगत् में सर्वत्र फैल गया। विद्वानों ने भी उनके इस पक्ष को ही शोध-कार्य का विषय बना लिया। उनके व्यक्तिगत और कृतित्व के अन्य पक्ष उतना उजागर नहीं हो सके। उनकी अनेक अन्य रचनाओं पर विश्लेषणात्मक अध्ययन नहीं किया गया। उन पर नज़र तक नहीं डाली गई। इस तथ्य को ध्यान में रखकर भविष्य में शोधकर्ताओं को कल्कि के निबंध-संग्रहों पर भी दृष्टि डालनी चाहिए।

तमिष़ गद्य और कल्कि

बीसवीं शताब्दी में नवीन सरल शैली को अपनाकर गद्य में अच्छे स्तर के ग्रंथों की रचना करके तमिष़ भाषा को समृद्ध बनाने वाले लेखकों में कल्कि विशेषरूप से स्मरणीय हैं। श्रीलंका के तमिष़ विद्वान वि. सेल्वनायकम अपनी पुस्तक *तमिष़ उरैनडै वरलारु* (तमिष़ गद्य का इतिहास) में लिखते हैं–

> "कल्कि एक महान् लेखक हैं, जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि उनके समय की तमिष़ भाषा में भी किसी विषय पर लेख लिखा जा सकता है। उनके लिखे निबंध, समीक्षाएँ, राजनीति से संबंधित टिप्पणियाँ आदि उनकी क्षमता की प्रमाण बनी हुई हैं। वे जिस विषय पर भी लिखते थे, उसे स्पष्ट रूप से और रोचक रीति से प्रस्तुत करने की सामर्थ्य उनको स्वाभाविक रूप से प्राप्त थी। वे अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट करते थे कि पाठक या अन्य लोग उनके तर्क को काट न पाते थे। दूसरे विचारों का विरोध करते समय वे इतने अदब के साथ लिखते थे कि संबंधित लोग उनके कहने के ढंग की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते थे। ये दोनों बातें उनके लेखन की दो विशेषताएँ बन गईं।" (पृ. 154-155)

प्रोफ़ेसर सेल्वनायकम आगे कल्कि की शैली का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं–"चाहे कोई पाठक कम शिक्षित हो या उच्च शिक्षित विद्वान हो, सभी स्तर के पाठकों

को उनकी शैली प्रिय लगती थी। तमिऴ़ गद्य शैली को आकर्षक और सशक्त बनानेवाले लेखकों में कल्कि प्रथम स्थान रखते हैं। यह कोई अत्युक्ति नहीं है।" (पृ. 155)

इस प्रकार सेल्वनायकम ने कल्कि की गद्य शैली की प्रशंसा की है। संक्षेप में कहें, तो महाकवि भारती ने जिस प्रकार तमिऴ़ काव्य शैली में एक नया मोड़ पैदा कर दिया, वही काम कल्कि ने गद्य के क्षेत्र में कर दिखाया।

कल्कि के निबंध

कल्कि ने *नवशक्ति, विमोचनम, आनंद विकटन* और *कल्कि* में संपादकीय ज़िम्मेदारी के कारण तथा अन्य पत्रिकाओं द्वारा पोंगल, दीपावली, वार्षिकोत्सव, शताब्दी आदि अवसरों पर प्रकाशित विशेषांकों में अतिथि लेखक के रूप में सैकड़ों लेख लिखे हैं। डॉ. कला ठाकर ने नामक अपने शोधग्रंथ के परिशिष्ट में कल्कि द्वारा विभिन्न विषयों पर लिखे गए 520 लेखों की सूची दी है। (पृ. 459-486)

कल्कि ने इन लेखों को भिन्न-भिन्न उपनामों से लिखा है। प्रसिद्ध लेखक और तमिलनाडु सरकार के भूतपूर्व मुख्य सचिव का. दिरविराम ने अपनी पुस्तक *देसियम वलर्त्त तमिऴ़* (तमिऴ़ में राष्ट्रीय भावना का विकास) में कल्कि के लेखों के स्तर और उनकी विशेषताओं के बारे में इस प्रकार लिखा है–

> "'कल्कि' उपनाम से उन्होंने जो निबंध लिखे, उन रचनाओं ने पाठकों को हँसा भी दिया और बहुत कुछ सिखा भी दिया। 'रा. कि.' (रा. कृष्णमूर्ति) नाम से लिखे निबंधों में उनकी रसज्ञता प्रकट हुई। 'कर्नाटकम' (परंपरावादी) उपनाम से जो लेख लिखे, उनमें उनकी कलाप्रियता दिखाई पड़ी। मोटे तौर पर, उनके निबंधों में मज़ाक़ की बातें भी हैं और वेदांत के सत्य भी हैं। उनमें एक ओर देशभक्ति का जोश है और दूसरी ओर हास्य का ठहाका हैं। दोनों में होड़ जैसा दिखाई पड़ता है। उनकी रचनाओं में पुराने युग के प्रति भक्ति लक्षित होती है, तो नवीन युग की शक्ति का भी समावेश हुआ है। सरलता और भाषा के उपयुक्त प्रयोग से उनकी गद्यशैली सुंदर बन गई।" (पृ. 135)

कल्कि निबंध संकलन

1. एट्टिक्कु पोट्टि (नहले पर दहला)

एक निबंधकार के रूप में कल्कि का मूल्यांकन करने का प्रयास करते समय उनका 'एट्टिक्कु पोट्टि' शीर्षक लेख ही हमारी याद में पहले-पहल आता है। कारण यह है कि *आनंद विकटन* पत्रिका के अगस्त 1928 के अंक में 'कल्कि' उपनाम से प्रकाशित सर्वप्रथम लेख यही है। फिर इसी शीर्षक से 1930 में कल्कि के निबंधों का प्रथम

संकलन निकाला। इसका द्वितीय संस्करण 17 साल बाद 1947 में चिन्न अण्णामलै नामक देशभक्त प्रकाशक के तीव्र प्रयत्नों के फलस्वरूप निकला। कल्कि के निबंध संकलनों में अब तक इसी के दस संस्करण निकले हैं।

इस संकलन का प्रथम संस्करण *आनंद विकटन* पत्रिका द्वारा प्रकाशित हुआ। पत्रिका के मालिक और प्रसिद्ध चित्रपट निर्माता एस.एस. वासन ने इस संकलन के बारे में इस प्रकार विज्ञापन दिया, "इसे कहने की ज़रूरत नहीं है कि तमिष़ में हास्य रस का आनंद उठाने को इच्छुक पाठकों को कल्कि के मिठास भरे ये लेख पढ़ने चाहिए।"[1]

इस संकलन के दसवें संस्करण (1997) में 17 निबंध हैं, जो एक सिद्धहस्त निबंधकार के रूप में कल्कि का परिचय कराते हैं। निम्नलिखित उद्धरण उनके हास्य का एक अच्छा उदाहरण है—

> "एक तमिष़ विद्वान एक नया शब्दकोश तैयार कर रहे थे। वे उसमें हाल के सभी नए शब्दों का समावेश कर देना चाहते थे। 'कंगारू' शब्द के लिए उन्होंने यह अर्थ दिया कि वह अफ़्रीका के देशों में पाई जानेवाली एक चिड़िया है, जो वहाँ की नदियों में पीछे की तरफ़ तैरती है, तब उन्होंने अंग्रेज़ी जाननेवाले एक मित्र को अपनी भाषा दिखाकर पूछा कि क्या यह अर्थ सही है। मित्र ने जवाब दिया, 'भाई साहब, इसमें छोटी-सी ग़लती है। एक तो कंगारू अफ़्रीका में पाया नहीं जाता। दूसरी बात यह कि वह पानी में तैर नहीं सकता। तीसरी बात है कि वह कोई चिड़िया नहीं है। बाक़ी आपने जो कुछ लिखा है, वह सब बिल्कुल ठीक है।" (पृ. 183)

इस गद्यांश से यह साबित होता है कि कल्कि बड़ी शालीनता के साथ और सभ्य ढंग से अपने निबंधों में हास्य का प्रयोग करते थे।

2. ओ मांपषमें! (हे आम!)

यह संग्रह निबंध-लेखन कला में कल्कि की प्रतिभा को सुस्पष्ट रूप से प्रकट कर देता है। इसमें कल्कि के नौ लेख संगृहीत हैं, जो पहले *आनंद विकटन* में प्रकाशित हुए थे। अन्य लेखों को छोड़ भी दें तो भी 'ओ मांपषमें' शीर्षक लेख (पृ. 1-11) कल्कि की लेखन-क्षमता को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। व्यंग्य, परिहास, मज़ाक़, दिल्लगी, ठिठोली, विनोद आदि हास्य के विविध आयामों से यह लेख भरा है। इस निबंध को पढ़ते समय जो साहित्यिक आनंद प्राप्त होता है वह वर्णनातीत है।

---

1. *पोन्नियिन्*, पृ. 194.

3. संगीत योगम

यह निबंध संकलन 1947 में निकला। इसमें 'कर्नाटकम' उपनाम से कल्कि द्वारा समय-समय पर लिखे गए 27 निबंध सम्मिलित हुए हैं। तमिलनाडु में होनेवाले संगीत के कार्यक्रमों में तमिष़ भाषा के गीतों को ज़्यादा गाने की माँग को लेकर एक आंदोलन 1941 से चल रहा था। उसके समर्थन में कल्कि ने ये लेख लिखे थे। कल्कि का लक्ष्य यह था कि एक ओर कर्नाटक संगीत कला (जो दक्षिण भारत में प्रचलित और जिसमें तेलुगु के गीतों की अधिकता है) का स्तर रत्ती भर भी कम न हो और दूसरी ओर तमिष़ गीतों के समर्थन में जो आंदोलन चल रहा था, वह जारी रहे और सफल बने।

कल्कि ने इन लेखों में तमिष़ संगीत के पक्ष में तीक्ष्ण दलीलों और व्याख्याओं को ज़ोरदार और युक्तियुक्त रूप में पेश किया है। एक लेख में 'निखल' नामक तकनीक के बारे में बताते हैं। गीत की किसी सारगर्भित पंक्ति को बार-बार और भिन्न-भिन्न ढंग से दुहराना निखल कहा जाता है। हरेक गायक 'निखल' में अपनी सारी सामर्थ्य खोलकर रख देने की कोशिश करता है। कल्कि पूछते हैं कि जिस तमिष़भाषी संगीतज्ञ की जीभ 'कोरगे लोसके विरुदकथा' (पद और उपाधि के लिए ईश्वर को अर्ज़ी देना) जैसे तेलुगु के कठिन शब्दों को कई बार दुहरा सकती है, क्या वही जीभ मातृभाषा तमिष़ की कोई गीत की पंक्ति जैसे 'इन्नल् कूट्टि इन्‌बम ऊट्टि, इंद्रजाल विद्दै काट्टि' (दुःख मिटाकर सुख दिलाकर, इंद्रजाल-सा चमत्कार दिखाकर) को नहीं गा सकती? अगर नहीं गा सकती, तो गड़बड़ी जीभ में ही होने की संभावना है, न कि तमिष़ भाषा में।" (पृ. 67)

'शिवजी ही जानते हैं' अर्थवाले शीर्षक के निबंध में कल्कि लिखते हैं—"प्राचीन काल में शिवजी एक बार तमिष़ संगीत सुनना चाहते थे। तिरुमिषलै नामक पुण्य क्षेत्र में जाकर सुनने के बाद वे बार-बार वहाँ जाने लगे। तमिष़ संगीत सुनने के लिए उन्होंने हर बार एक स्वर्ण मुद्रा दी थी। आजकल तो हम कागज़ के रुपए देकर टिकट लेते हैं।" (पृ. 187)

गंभीर समस्या को लेकर लिखे गए इन निबंधों में हास्य का अभाव भी नहीं है। इसे उपर्युक्त उदाहरण सिद्ध करते हैं।

4. इसै विरुन्दु (संगीत रूपी प्रीतिभोज)

समालोचना अपने आप में एक कठिन कला है। संगीत के कार्यक्रमों का मूल्यांकन तो विरले ही कर सकते हैं। कल्कि ने इस कठिन कार्य का निर्वाह कुशलतापूर्वक कर दिखाया है। इसके प्रमाण में उनके *इसै विरुन्दु* नामक निबंध-संग्रह को ले सकते हैं। इसमें संगीत कला से संबंधित 14 लेख शामिल किए गए हैं। यह संग्रह 1957 में प्रकाशित हुआ।

परंपरागत, गंभीर और उच्च स्तर के शास्त्रीय संगीत के विरुद्ध जो निम्न स्तर का गाना-बजाना प्रचलित हो गया है, उसे कल्कि 'बाज़ारू संगीत' कहते हैं। इसके विरुद्ध अपने विचारों को ज़ोरदार ढंग से प्रतिपादित करते हुए कल्कि ने दो लेख लिखे हैं—'बाज़ारू संगीत बिकाऊ ज़रूर है' और 'बाज़ारू संगीत का नाहक समर्थन'। तमिलनाडु के कई नामी संगीत-कलाकारों के कार्यक्रमों में उपस्थित होकर कल्कि ने हर एक की विशेषताओं और उपलब्धियों के बारे में अलग-अलग सुंदर लेख लिखे हैं। उनमें कुछ संगीतज्ञों के नाम से इस प्रकार हैं—चेम्बै वैद्यनाथ भागवतर, मदुरै मणि अय्यंगार, मायवरम कृष्ण अय्यर, एम. एल. वसंतकुमारी।

(5) कुमरियुम् कुन्रमुम् (कन्याकुमारी और तिरुप्पति पहाड़)

यह निबंध-संग्रह 1956 में प्रकाशित हुआ। इसमें 20 लेख पाए जाते हैं। ये सभी लेख *कल्कि* पत्रिका में (1945-1954) प्रकाशित हुए थे। ये लेख समय-समय पर देश की हालत को ध्यान में रखकर लिखे गए थे। इनको पढ़कर हम राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का सारा इतिहास आसानी से समझ सकते हैं।

विशेषरूप से कुछ लेख जैसे, 'आगस्ट त्यागिगल' (अगस्त सत्याग्रह के शहीद), 'पिरंद पयन् पेट्रोम' (जन्म हमारा सफल हुआ), 'वाष्ग सुतंतिरम, वाष्ग निरंतरम' (हमारी स्वतंत्रता की जय! वह क़ायम रहे निरंतर), 'कण्णिलुम् इनियदु' (आँखों से अधिक प्यारी), 'जाति वेट्रुमै ओषिय अन्बु वष़िये वषि' (जाति-प्रथा के उन्मूलन के लिए स्नेह का मार्ग ही एकमात्र रास्ता), 'पुदिय तमिष़ नाट्टिनाय् वा, वा, वा' (आओ, आओ, नवीन तमिलनाडु के लोगो) आदि कल्कि के गंभीर चिन्तन की गवाही देते हैं।

उपर्युक्त लेखों में 'कण्णिलुम् इनियदु' से एक उदाहरण देखेंगे। उसमें कल्कि स्वतंत्रता की व्याख्या करते हैं :

> "जब हम 'स्वतंत्रता' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब उसके कई अर्थों में हम देश की राजनीतिक स्वतंत्रतावाले अर्थ को ही प्रथम स्थान देते हैं।
> यह राजनीतिक स्वतंत्रता ही सर्वाधिक मुख्य है। वैसे और भी कई तरह की स्वतंत्रता होती है, जैसे आर्थिक स्वतंत्रता, तिजारत करने की स्वतंत्रता, रोज़गार की स्वतंत्रता, शिक्षित होने की स्वतंत्रता, अशिक्षित रह जाने की स्वतंत्रता, टीका लगवाने या न लगवाने की स्वतंत्रता, मनमाने ढंग से लिखने या बोलने की स्वतंत्रता—ये सब स्वतंत्रता की दूसरी कोटि के अंतर्गत आती हैं, लेकिन इस द्वितीय प्रकार की स्वतंत्रता हमें उपलब्ध न होने से राजनीतिक स्वतंत्रता के बारे में लापरवाही से बोलना बेवकूफ़ी है। अगर राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जाए, तो कालांतर में अन्य प्रकार की रिआयतें ज़रूर पीछे-पीछे आ जाएँगी।

अगर राजनीतिक स्वतंत्रता अस्तित्व में न हो, तो किसी भी अन्य प्रकार की आज़ादी कभी हासिल नहीं होगी। इसलिए अपने देश की स्वतंत्रता को बिगाड़ देने का कोई काम उस देश के किसी भी प्रजा को नहीं करना चाहिए। जो ऐसी बुराई करता है, वह अपनी मातृभूमि का विश्वासघाती माना जाएगा।" (पृ. 110)

इस तरह कल्कि ने अन्य सभी प्रकार की स्वतंत्रता से बढ़कर देश की राजनीतिक स्वतंत्रता को प्रथम स्थान दिया है। इस संबंध में उनके विचार गहराई से सोचने लायक हैं।

(6) कण्कोळ्ळा काट्चिगळ् (अद्भुत दृश्य)

यह निबंध-संग्रह 1957 में प्रकाशित हुआ। इसमें 24 लेख संकलित हुए हैं। तमिलनाडु में समय-समय पर ऐतिहासिक दृष्टि से जो मुख्य घटनाएँ हुईं, उन्हें *कल्कि* ने अपनी विशिष्ट शैली में इन लेखों में वर्णित किया है।

(7) कारावास के अनुभवों के दो संकलन

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में कल्कि ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। उसके पुरस्कार के रूप में उनको तीन बार जेल जाना पड़ा। उन्होंने जेल के जीवन में प्राप्त अपने अनुभवों को दो पुस्तकों के रूप में लिखकर प्रकट किया। उनके नाम हैं : *कण्णीराल् कात्त पयि़र* (फ़सल जिसे सींची थी आँसुओं से); *मून्रु मादम् कडुम् कावळ्* (तीन महीने का सश्रम कारावास)।

कल्कि को प्रथम बार एक वर्ष (1922), दूसरी बार छह महीने (1930) और तीसरी बार तीन महीने (1941) के कारावास की सज़ा मिली थी। उन्होंने प्रथम दो बार के अनुभवों को *आनंद विकटन* पत्रिका में और तीसरी बार के अनुभवों को *कल्कि* पत्रिका में स्वतंत्र लेखों के रूप में लिखा। इन लेखों को पढ़कर और इनसे प्रभावित होकर सैकड़ों तमिष़भाषी युवक कांग्रेस के कार्यक्रमों में उमंग के साथ भाग लेकर निडरता से जेल जाने लगे।

जब तीन महीने के जेल-जीवन से संबंधित लेख *कल्कि* पत्रिका में निकल रहे थे, तब उनको पढ़कर एक मित्र ने कल्कि से कहा, "कल्कि महोदय, जेल-जीवन के बारे में आप जो लिखते आ रहे हैं, उसे पढ़ने पर ऐसा तो नहीं लगता कि आपको जेल में कोई ख़ास तकलीफ़ हुई थी। उलटे, ऐसा आभास होता है कि आप वहाँ मज़े में रह रहे थे।"

कल्कि ने हँसकर उत्तर दिया, "हाँ जी, मैं चाहता हूँ कि आपके मन में जेल का डर न रहे, ताकि अगली बार सत्याग्रह आंदोलन में आप भी भाग लेकर जेल में पहुँच जाएँ। इसलिए जेल के जीवन में उपलब्ध होनेवाले आराम और सुख-सुविधाओं के बारे में ही ज़्यादा लिखता आ रहा हूँ।"[1]

कल्कि ने जेल में प्राप्त अनुभवों और वहाँ की कई घटनाओं का वर्णन हलके-फुलके ढंग से हास्य मिश्रित शैली में किया है। कल्कि का आशय है कि इन लेखों को पढ़ने से लोगों के मन में जेल का डर कम हो जाएगा, तब वे सोचने लगेंगे कि जेल में जीवन इतना आरामदायक हो, तो हम भी सत्याग्रह करके क्यों न जेल में जाएँ।

कल्कि को प्रथम बार एक साल की जो सज़ा हुई थी, उस परिस्थिति का वर्णन हलके हास्य के साथ इस प्रकार किया गया है :

> "मुझ पर मुक़द्दमा चलाया गया। पूछताछ करके फ़ैसला देने के लिए एक आई.सी.एस. साहब आए हुए थे। वे अंग्रेज़ थे और जवान भी थे। मैं उनसे भी कम उम्र का था। पूछताछ के दौरान साहब ने अभियोग चलानेवाले अधिकारी से कहा, 'इस मुलज़िम से पूछो कि क्या यह 'सिडिशन' (राजद्रोह) का मतलब जानता है।' अधिकारी द्वारा पूछे जाने के पहले ही मैंने जवाब दिया, 'क्यों नहीं, हुज़ूर? मैं सिडीशन का मतलब ख़ूब जानता हूँ, क्योंकि पिछले एक वर्ष से मैं वही काम तो करता आ रहा हूँ।' सच बोलने का नतीजा यह निकला कि एक साल के सश्रम कारावास की सज़ा हुई।"[2]

सुविधाओं से भरपूर घर-गृहस्थी छोड़कर और असहयोग आंदोलन में भाग लेकर कष्टप्रद जेल-जीवन बिताने पर भी कल्कि की हँसने-हँसाने की प्रवृत्ति अक्षुण्ण रही।

(8) तिरुमगलुम् कलैमगलुम् (लक्ष्मी और सरस्वती)

यह निबंध-संग्रह 1956 में प्रकाशित हुआ। इसमें शिक्षा-क्षेत्र से संबंधित 16 लेख पाए जाते हैं, जो पहले *कल्कि* पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। इन लेखों में शिक्षा-क्षेत्र में जिन आधारभूत परिवर्तनों, पुनरीक्षणों और सुधारों को कार्यान्वित करना आवश्यक है, उनके बारे में कल्कि ने गहराई से सोचा है। वे यह निष्कर्ष निकालते हैं, "हमारी शिक्षा पद्धति, पाठ्यक्रम और परीक्षा प्रणाली, इन तीनों में आमूल परिवर्तन हो जाने

---

1. *मूनरु मादम् कडुम् कावल*, पृ. iv
2. वही, पृ. 14-15

पर ही भारत में आनेवाली पीढ़ी के लोग टिक पाएँगे और जीवन में कुछ कर पाएँगे।" (पृ. 64)

शिक्षा-क्षेत्र में व्याप्त कई समस्याओं को दूर करने के लिए कल्कि का एक सुझाव यह है कि प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में, "सिर्फ़ सुबह स्कूल चले, वह भी ढाई घंटे मात्र" (पृ. 92)

उनके एक लेख के शीर्षक का अर्थ है 'परीक्षा प्रणाली में बंदर का नाच।' इसमें वे हमारी शिक्षा पद्धति की एक मुख्य कमी की ओर इशारा करते हैं। वे कहते हैं : "हमारी शिक्षा-प्रणाली दैनिक जीवन से सटकर या उसके साथ जुड़कर नहीं चलती। इस प्रणाली में हाथ से कोई काम करने या शारीरिक श्रम करने का अभ्यास बच्चों को नहीं मिलता।" (पृ. 141)

(9) कलै चेलवम् (कलारूपी संपत्ति)

यह निबंध-संग्रह 1957 में प्रकाशित हुआ। फ़िल्मों और नाटकों पर कल्कि ने समय-समय पर जो समीक्षाएँ लिखी थीं, वे इस पुस्तक में समेटी गई हैं। इसमें 26 निबंध हैं। कला के प्रदर्शन में जहाँ भी कोई विशेषता दिखाई पड़े, कल्कि उसकी हार्दिक प्रशंसा करते थे। कोई कमी नज़र आए, तो उसकी आलोचना करने से वे हिचकते नहीं थे, लेकिन शालीन ढंग से और सहृदयता से उस कमी की ओर इशारा करते थे। उनके समीक्षात्मक लेख खंडन करते समय भी सभ्यता की सीमा का उल्लंघन नहीं करते थे।

लगभग 50 वर्ष पहले तमिष़ में 'मनोहरा' नामक फ़िल्म आई थी। इस चित्रपट द्वारा अभिनेता शिवाजी गणेशन और संवाद-लेखन मु. करुणानिधि (द्र.मु.क. के नेता) घर-घर प्रसिद्ध हो गए। इस फ़िल्म में नायक मनोहरन बंदी होकर राज दरबार में उपस्थित किया जाता है। तब वह राजा के विरुद्ध एक ज़ोरदार भाषण देता है, जिसके शब्द आग की चिनगारियाँ जैसे फूट पड़ते हैं।

कल्कि इस भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उसे शब्दों का प्रवाह, शब्दों की बाढ़, शब्द-प्रलय, शब्दों का चंड मारुन, शब्द रूपी बाण वर्षा, शब्दों की बमबारी, अणुबम जैसा शब्द विस्फोट, ज्वालामुखी-सा भाषण आदि नामों से पुकारते हैं। आगे वे कहते हैं : "तमिष़ भाषा का प्रयोग जितने सशक्त रूप से किया जा सकता है, उसके लिए दरबार में मनोहरन का यह भाषण उत्तम उदाहरण है।" (पृ. 150)

उन दिनों कांग्रेस और द्र.मु.क. राजनीति में भीषण प्रतिद्वंद्वी थे। फिर भी कल्कि ने निष्पक्षता के साथ द्र.मु.क. के नेता करुणानिधि की संवाद-कला की प्रशंसा कर दी।

अव्वैयार नामक एक प्राचीन तमिष़ कवयित्री के जीवन पर आधारित एक नाटक उन दिनों बहुत लोकप्रिय था। टी.के. षण्मुखम (1912-1973) नामक युवक

कलाकार वृद्ध कवयित्री का अभिनय बड़ी ख़ूबी से करके वाह-वाही पाते थे। कल्कि ने इस नाटक की समीक्षा करते हुए लिखा कि अगर अभिनय कला के लिए नोबल पुरस्कार हो तो उसे षण्मुखम श्री को प्रदान करने के लिए संस्तुति करता हूँ।" (पृ. 14)

'नल्लतंबि' (नायक का नाम) नामक फ़िल्म की समीक्षा के अंत में कल्कि यह सलाह देते हैं : "जो लोग फ़िल्मों में नए-नए प्रयोगों को देखने को इच्छुक हैं, वे कोई और फ़िल्म जाकर देखें। मगर जो लोग फ़िल्म में अच्छा उद्देश्य, कुशल अभिनय और स्वस्थ हास्य की माँग करते हैं, वे 'नल्लतंबि' देखने जाएँ।" (पृ. 50)

कल्कि की दृष्टि में केवल नवीन तकनीकी प्रयोगों से कोई फ़िल्म उत्तम कोटि की नहीं बन जाती। कोई हितकारी उद्देश्य, कुशल अभिनय, स्वस्थ हास्य आदि का समावेश होने पर ही किसी फ़िल्म को आदर्श फ़िल्म मान सकते हैं। कल्कि ज़ोर देकर कहते हैं : "फ़िल्मों के निर्माता देश और लोगों की उन्नति को ध्यान में रखकर दस फ़िल्मों में कम से कम एक फ़िल्म के अनुपात में अच्छे स्तर की फ़िल्म बनाएँ। ऐसे स्तर की फ़िल्मों को विदेशों में भी प्रदर्शित करके देश के लिए गौरव उपार्जित करें।" (पृ. 103)

(10) महात्मावुम् और महाकवियुम् (गाँधीजी और भारतीजी)

कल्कि के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में योगदान देनेवालों में उल्लेखनीय दो महापुरुष महात्मा गाँधी और सुब्रह्मण्य भारती हैं। कल्कि को गाँधीजी के जीवन-सिद्धांतों के प्रति गहरी आस्था थी और भारती की रचनाओं के प्रति बड़ी आसक्ति थी। इन महापुरुषों के प्रति कल्कि की निष्ठा को प्रकट करनेवाले 17 लेखों का संग्रह ही *महात्मावुम् महाकवियुम्* नामक पुस्तक है। ये लेख पहले *कल्कि* पत्रिका में संपादकीय के रूप में या स्वतंत्र रूप में प्रकाशित हुए थे।

गाँधीजी के बारे में कल्कि का वर्णन एक भव्य और आकर्षक शब्द-चित्र बन गया है। गाँधीजी की आत्म-शक्ति पर उनका विश्वास भी इस वर्णन से प्रकट होता है। कल्कि लिखते हैं :

"गाँधीजी हिमालय से भी ऊँचे व्यक्तित्ववाले हैं। वे गंगा नदी से भी पवित्र हैं; सूर्य भगवान से भी तेजोमय हैं; माता से भी करुणापूर्ण हैं; वे भगवान के अवतार जैसे हमारी रक्षा करने आए हैं; वे सत्य के समान अविचलित रहनेवाले हैं।" (पृ. 35)

"महात्माजी की आत्म शक्ति ही भविष्य में भी इस संसार की रक्षा करके मनुष्यमात्र पर कृपा करनेवाली है।" (पृ. 58)

कल्कि की दृष्टि में भारती एक महाकवि थे; वर कवि थे; देवभाषा सदृश तमिष़ में अमृतोपम मधुर गीतों के रचयिता थे। उनके गीत हमेशा हमारे लिए पथप्रदर्शक और विश्वसनीय सहचर के रूप में काम आएँगे। (पृ. 89, 97, 103)

(11) भारती पिरंदार (भारती पैदा हुए)

इस संकलन में नौ लेख हैं। इसका शीर्षक प्रथम लेख पर आधारित है, जो विशेष महत्त्व रखता है। यह *कल्कि* पत्रिका के 8 अक्तूबर 1944 के अंक में प्रकाशित हुआ। भारती के जन्मस्थान एट्टयपुरम शहर में एक यादगार स्थापित करने के लिए पाठकों से आर्थिक सहायता का निवेदन करते हुए कल्कि ने यह लेख लिखा था। जल्दी ही चालीस हज़ार रुपये वसूल हो गए, जो उन दिनों बहुत बड़ी रक़म थी। वह तमिष़ पत्रकारिता जगत् में एक आश्चर्यजनक घटना भी थी। इस निबंध-संग्रह में भारती के अलावा कुछ अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों के बारे में भी सुंदर ढंग से लिखे लेख मिलते हैं। उनमें तिरु. वि. कल्याणसुंदर मुदलियार, कांग्रेस के नेता सत्यमूर्ति, माता कस्तूरबा और कवि रामलिंगम पिळ्ळै पर लिखे लेख विशेष महत्त्व रखते हैं।

कल्कि के निबंधों की कतिपय विशेषताएँ

(1) भाषा-शैली की प्रांजलता

महाकवि भारती अभिव्यक्ति से संबंधित कुछ क्षमताएँ प्रदान करने की याचना करते हुए सरस्वती जी से एक गीत में प्रार्थना करते हैं।

"स्पष्टता से सब समझ लेने,
स्पष्टता से सब कुछ समझाने,
सोचनेवालों को सुखद स्वप्न दिखाकर
आनंद प्रदान करने,
मन को द्रवीभूत करके
आँसू पैदा करने"

की क्षमताएँ भारती प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि सरस्वती जी ने ये क्षमताएँ (प्रांजलता, स्पष्ट शैली, चिन्तन का आनंद और मार्मिकता) काव्य के क्षेत्र में भारती को और गद्य के क्षेत्र में कल्कि को प्रदान कर दीं।

अल्प शिक्षित सामान्य लोगों से लेकर ख़ूब अंग्रेज़ी जाननेवाले उच्च शिक्षित व्यक्ति तक सभी तमिष़भाषी लोग कल्कि की गद्य रचनाओं को चाव से पढ़ डालते थे। इसका कारण यह है कि उनकी शैली सरल और प्रांजल है। उन्होंने तरह-तरह के विषयों पर लिखा है। कलाएँ, शिक्षा, भाषा, संगीत, नृत्य, नाटक, फ़िल्म, समाचार पत्र, समीक्षा, यात्रा-विवरण, समाज की स्थिति, संत लोग, नेता लोग, स्वयं के अनुभव, श्रद्धांजलि, दूसरों की पुस्तकों के लिए प्रस्तावना इत्यादि से संबंधित एक विशाल क्षेत्र कल्कि की लेखनी के अंतर्गत फैला हुआ था। वे जिस विषय पर भी लिखते थे, उसे पहले पूर्ण और स्पष्ट रूप से समझ लेते थे, तब वे स्पष्ट और सरल शैली में उस विषय

पर लेख लिख देते थे। विषय को साफ़-साफ़ समझाने के लिए आधुनिक युग की बोलचाल की तमिष़ भाषा का प्रयोग करते थे। इसलिए वे अपने विचारों को किसी रुकावट के बिना व्यक्त कर पाते थे। एक उदाहरण देखिए :

"अल्पायु में ही लोगों के मर जाने के लिए बदनाम हमारे देश में कोई व्यक्ति आयु के 60 साल पूरा कर ले, तब सब लोग संतोष प्रकट करते हैं। अगर 70 साल की उम्र पार कर कोई मर जाए, तो लोग ज़्यादा दुःखी नहीं होते। सोचते हैं कि उस मनुष्य ने ठीक वक़्त पर कूच कर जाने का उचित काम ही किया है।"

"अगर कोई 75 साल की आयु के बाद भी जीवित रहे, तो हमें ऐसा लगता है कि वह कोई अनुचित काम कर रहा है। हम विस्मय के साथ कह उठते हैं कि इस आदमी की जान बड़ी पक्की लगती है। ऐसा व्यक्ति जब एक दिन मर ही जाता है, तब लोग खुले तौर पर कहने लगते हैं : 'हाँ, ठीक ही किया है। बहुत बूढ़ा हो चुका था। उसके जीवन की अवधि पूरी हो गई। अगर वह ज़्यादा दिन ज़िन्दा रहता, तो अपने लिए भी और परिवारवालों के लिए भी बड़ी मुसीबत बन जाता।"

"महामहोपाध्याय स्वामिनाथय्यर 86 वर्ष की आयु पूरा करके 87 वें वर्ष में स्वर्ग सिधारे, परंतु उनकी मृत्यु से कुछ अभाव-सा लगता है। हमें ऐसा महसूस होता है कि जो होना नहीं चाहिए था, वह होकर रह गया। हमें गुस्सा भी होता है कि धूर्त यमराज क्या कुछ और वर्ष तक सब्र नहीं कर सकता था?"

"वे तमिष़ भाषा और तमिष़ लोगों की बड़ी सेवा करते आ रहे थे। ऐसा सेवा कार्य उनके पहले किसी ने भी नहीं किया था; आगे भी इतना कर सकनेवाला कोई नहीं होगा। उनके देहावसान से तमिलनाडु की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति हो ही नहीं सकती।"[1]

उपर्युक्त गद्यांश उ.वे. स्वामिनाथय्यर (1855-1942) के निधन पर कल्कि ने शोक प्रकट करके जो लेख लिखा था, उससे उद्धृत है। यह लेख इसे दिखाता है कि एक दिवंगत महापुरुष के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करके कैसे शोक-लेख लिखा जाना चाहिए। कल्कि ने इस लेख को 'गिरा वह विशाल वट वृक्ष' शीर्षक दिया है, जो प्रतीकात्मक और उपयुक्त है।

कल्कि इस लेख का आरंभ अपने गाँव की पाठशाला के नज़दीक सड़क के किनारे बड़ी ऊँचाई तक वढ़े हुए बरगद के पेड़ की याद से करते हैं। तमिष़ साहित्याकाश को आच्छादित करते हुए स्वामिनाथय्यर ने तमिष़ भाषा की जो-जो

---

1. *भारती पिरंदार*, पृ. 97

सेवाएँ की थीं, उनका उल्लेख करके कल्कि लेख की विषय वस्तु को पुष्ट करते हैं। ताड़-पत्रों पर लिखित पुरानी तमिष़ कृतियों की खोज में स्वामिनाथय्यर का जगह-जगह मारा-मारा फिरना; उन ताड़-पत्रों पर फैले हुए दीमकों के साथ उनका संघर्ष; जब कभी भेंट होने पर उनके साथ जो रोचक बातें हुईं, उनका ज़िक्र; ऐसे सेवा-व्रती पर भी लांछन लगाकर अफ़वाहें फैलानेवाले संसार के स्वभाव की तीखी आलोचना आदि बातें लेख में स्थान पाकर उसे पूर्णता प्रदान करती हैं।

स्वामिनाथय्यर अपनी सेवाओं के लिए कई उपाधियों और विशेष नामों से अलंकृत हुए, जैसे, महामहोपाध्याय, दाक्षिणात्य कलानिधि, द्राविड़ विद्या भूषणम्, डॉक्टर, आदि, लेकिन सभी तमिष़ लोग आजकल भी उनको स्नेह और श्रद्धा के साथ 'तमिष़ तात्ता' (तमिष़ के पितामह) पुकारते हैं। यह प्यारा संबोधन कल्कि द्वारा ही स्वामिनाथय्यर के 80 वर्ष की आयु के पूरे होने पर सुझाया गया और यह संबोधन स्थायी बन गया है।

इस लेख से यह भी स्पष्ट होता है कि कल्कि की तमिष़ जीवंत और बोलचाल की तमिष़ है तथा भावपूर्ण और सरल तमिष़ है। कल्कि ने स्वामिनाथय्यर को तमिष़ के पितामह पुकारने के तीन कारण भी दिए हैं, जो केला-आम-कटहल के समान मीठे लगते हैं। कल्कि अपने लेख में स्वामिनाथय्यर को संबोधित करते हुए लिखते हैं :

"सबसे पहली बात यह है कि जिस प्रकार वृद्ध कवयित्री अव्वैयार के लिए प्रचलित 'तमिष़ पाट्टि' (पितामही) की उपाधि अत्यंत उपयुक्त है, उसी प्रकार आपकी लंबी आयु और तमिष़ के लिए आपकी सेवाओं को देखते हुए आपको 'तमिष़ तात्ता' की उपाधि देना बिलकुल समीचीन है।"

"दूसरी बात यह है कि उपर्युक्त उपाधि में से 'त्' को निकाल दें, तो आप 'तमिष़ ताता' (ताता = दाता = देनेवाला, दान करनेवाला) बन जाते हैं। हमारे देश में यह रिवाज प्रचलित था कि किसी को ताड़-पत्र के ग्रंथ मिल जाने पर उनको छिपाकर रख देता था, लेकिन आपने ऐसा नहीं किया। आपको जो ग्रंथ प्राप्त हुए उन्हें छपवाकर और प्रकाशित कर हज़ारों लोगों के लिए सुलभ बना दिया। इस प्रकार आपने अपनी दानशीलता प्रकट कर दी।"

"तीसरी बात यह है कि जैसे जो बिल्ली दूध चख चुकी है, वह छींके को देखते ही ऊपर की तरफ़ छलांग मारेगी वैसे ही आपके द्वारा तमिष़ साहित्य के स्वाद से परिचित हो जाने पर तमिष़ प्रेमी लोग आपसे विनय करते हैं, 'तमिष़ के ताता जी, और भी तमिष़ ग्रंथ ता-ता।'[1]

---

1. तमिल वर्णमाला में एक ही 'त' होने से 'ताता' के तीन अर्थ निकलते हैं : पितामह, दाता, दो-दो (क्रिया)।

"इसलिए आपको निश्चित रूप से 'तमिष़ ताता' की उपाधि को स्वीकार करना ही चाहिए। अगर आप इसको मंजूर न करें, तब भी मैं आपको 'तमिष़ तात्ता' की उपाधि से ही संबोधित करूँगा। कारण यह कि 'महामहोपाध्याय', 'दाक्षिणात्य कलानिधि' इत्यादि आपकी अन्य उपाधियों का उच्चारण करना भी मेरे लिए मुश्किल काम है, लेकिन आपको तमिष़ ताता पुकारना इतना आसान लगता है, जैसी आपकी गद्यशैली होती है।"[1]

स्वामिनाथय्यर को प्राप्त अनेक उपाधियों में कल्कि द्वारा प्रदत्त 'तमिष़ तात्ता' उपाधि ही जन-मानस में स्थापित हो गई। सामिनाथय्यर ने भी बड़े हर्ष के साथ इस उपाधि को स्वीकार कर लिया।

(2) रोचक प्रस्तुतीकरण

सरल भाषा-शैली को अपनांने के साथ-साथ कल्कि ने निबंध को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए भी वहुत प्रयास किया। निबंध के विषय को दिलचस्प बनाने के लिए उन्होंने मज़ाक़ की बातें, लघु कहानियाँ, जीवन के क़िस्से आदि का सहारा लिया। जिस प्रथम लेख से वे निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हुए, उसका शीर्षक भी अजीब था। 'एट्टिक्कु पोट्टि' (नहले पर दहला) शीर्षकवाला वह निबंध रोचक प्रस्तुतीकरण का अच्छा उदाहरण है।

भारतीय समाज में बहुत-से लोग बात-बात पर और हर छोटे-मोटे काम के लिए शुभ दिन और शुभ घड़ी तय करना, शकुन देखना, ज्योतिषी से परामर्श लेना, पंचांग देखना आदि में अपना समय बरबाद करते हैं। कल्कि ने इस लेख में लोगों की इस प्रवृत्ति का खंडन किया है। इसके लिए उन्होंने शालीन हास्यमिश्रित व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। अपने विचार को पुष्ट करने और रोचक बनाने के लिए वे एक लोक कहानी सुनाते हैं, जो इस प्रकार है :

"किसी सगुनिया ने एक राजा के पास जाकर कहा कि बड़े सबेरे दो कौओं को एकसाथ देखना बढ़िया शकुन है, तब राजा ने एक नौकर को बुलाकर आज्ञा दी कि सुबह के वक़्त कहीं भी दो कौए साथ-साथ दिखाई पड़े तो वह तुरंत आकर इत्तिला दे। एक दिन सुबह उस नौकर ने एक जगह कौओं का एक जोड़ा देखा, तुरंत वह दौड़कर राजा के पास गया। कौओं की उपस्थिति के बारे में सूचना दी। राजा भी तेज़ी से उस जगह को पहुँचा। मगर, हाय! वे कौए तब तक उड़कर कहीं जा चुके थे। राजा ने गुस्से में आकर नौकर

---

1. *पोन्नियिन् पुदलवर*, पृ. 306-307

की ख़ूब पिटाई कर दी, तब नौकर ने कहा, 'महाराज, सुवह के समय दो कौओं को साथ-साथ देखने का सुफल मुझे अब मिल ही गया है।' उसकी बात सुनकर राजा भौंचक्का रह गया। आज का ज़माना होता, तो उस नौकर की ढिठाई पर कुपित होकर उसका मालिक उसे नौकरी से बरख़ास्त कर देता, लेकिन वह ज़माना भिन्न तरह का था। राजा ने शर्मिन्दा होकर नौकर से माफ़ी माँगली।" (पृ. 26)

उपर्युक्त गद्यांश में वर्तमान और प्राचीन युगों के शिष्टाचारों के बीच जो अंतर है, उसे दिखाने के वास्ते कल्कि अपनी ओर से जोड़ते हैं कि आज का ज़माना होता, तो नौकर की गुस्ताख़ी पर उसे नौकरी से निकाल देते। इस प्रकार दो स्थितियों की तुलना करके अपना मत प्रकट करना, कल्कि की लेखन शैली की एक विशेषता है।

इस तरह की लोक कहानियाँ, देश-विदेशों में प्रचलित लघु कहानियाँ, तेनाली रामन नामक विदूषक से संबंधित कहानियाँ, अपने जीवन की दिलचस्प घटनाएँ आदि का समावेश कल्कि ने अपने लेखों में जगह-जगह करके उनको रोचक बना दिया है।

(3) सीधी-सरल अभिव्यक्ति

किसी बात को स्पष्टता और रोचकता के साथ सुनाने के अलावा उसे सरल शैली में प्रस्तुत करना भी ज़रूरी है। कल्कि का दृढ़ विश्वास था कि सरल शैली में अभिव्यक्त करने पर ही उनके लेखों का संदेश सभी लोगों तक पहुँच सकेगा।

महाकवि भारती ने अपने *पांचाली शपथम* (द्रौपदी की प्रतिज्ञा) नामक काव्य की भूमिका में लिखा है : "जो कवि सरल शब्द, सरल शैली, आसानी से समझ में आनेवाला छंद, जनता को प्रिय लगनेवाली धुन आदि से युक्त रचना की सृष्टि करता है, वह हमारी मातृभाषा में नए प्राण फूँकनेवाला होता है। एक-दो साल अध्ययन और अभ्यास करके तमिष़ पुस्तकें पढ़ने की आदत जिन लोगों में क़ायम हो गई हो, उनकी समझ में आनेवाली शैली में लिखना चाहिए। साथ-साथ इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि काव्य के लिए आवश्यक लक्षणों में किसी की भी कमी न हो।"

भारती ने आदर्श काव्य शैली के लिए जो लक्षण निर्दिष्ट किए थे, उनका अनुकरण कल्कि ने अपनी गद्यशैली के संदर्भ में जीवन भर किया था। उन्हीं लक्षणों के आधार पर कल्कि ने अपनी अधिकांश रचनाएँ लिखीं। विशेष रूप से, शब्द-चयन और शैली के प्रवाह में सादगी अपनाकर इस ढंग से निबंध लिखे कि औसत रूप से शिक्षित तमिष़भाषी लोग भी उनको पढ़कर समझ सकें। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान रखा कि निबंध कला के लक्षणों में कोई कमी आ न पावे। उदाहरण के लिए 'तमिष़ उयर्‌ला' (तमिष़ की बढ़ोतरी हो) शीर्षक लेख के शुरू के अंश को देखेंगे :

"तमिलनाडु में तमिष़ भाषा का पनपना और बढ़ना मात्र काफ़ी नहीं है। उसको उन्नति भी करनी है। उसे ऊँचाई तक पहुँचना है। तमिष़ लोगों को अपनी भाषा के फलने-फूलने के लिए आवश्यक प्रयत्नों को करते रहना चाहिए। साथ-साथ उसको एक उन्नत भाषा बनाने के उपायों की भी जानकारी प्राप्त करके उन्हें अमल में लाना चाहिए।"[1]

किसी की कोई बात पसंद आने पर कल्कि कहा करते थे कि यह बात लाखों रुपयों का सम्मान पाने योग्य है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कल्कि का उपर्युक्त विचार भी उतना ही प्रशंसनीय है। सरल शब्द में व्यक्त यह विचार हमें गहराई से सोचने के लिए प्रेरित करता है। सिर्फ़ मंचों पर खड़े होकर 'तमिष़ ज़िन्दाबाद', 'तमिष़ फूले फले' आदि का नारा लगाने से या मंदिरों में जाकर तमिष़ को उन्नत बनाने की क़सम खाने मात्र से तमिष़ न तो सुरक्षित रह पाएगी और न उन्नति ही कर पाएगी।

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में तमिष़ को समृद्ध बनाने के लिए तमिष़ लोगों को क़दम उठाने चाहिए। साथ-साथ तमिष़ को उन्नत बनाने के प्रयत्नों से भी परिचित हो जाना चाहिए।

प्रगतिशील कवि भारतीदासन (1891-1964) तमिष़ के कट्टर समर्थक थे। वे अपनी रचना 'तमिष़ इयक्कम' (तमिष़ के पक्ष में आंदोलन) में कहते हैं कि लोगों के द्वारा प्रयत्न उठाने पर ही तमिष़ भाषा पहले परिमार्जित, फिर समृद्ध बनेगी। कल्कि भी यही विचार रखते थे। उनके अनुसार, वर्तमान परिस्थिति में, हर एक तमिष़भाषी व्यक्ति को अर्थ समझकर जिस मंत्र का जप करना है वह है, 'तमिष़ भाषा फले-फूले।'

इसी लेख में कल्कि ने तमिलनाडु के विद्यालयों के पाठ्यक्रम में तमिष़ की दयनीय हालत का तथा तमिष़ के अध्यापकों को अन्य शिक्षकों से कम वेतन दिए जाने के अन्याय का भंडाफोड़ किया है। इस सिलसिले में कल्कि दो तेज़ सवाल पूछते हैं :

"स्वर्ण-सिंहासन पर तमिष़ भाषा रूपी माता को आसीन तो कर दिया, तब उसे फटे-पुराने-गंदे कपड़े ही पहनने के लिए बाध्य करना क्या न्यायपूर्ण है? तमिष़ माँ की सेवा करनेवाले तमिष़ के अध्यापकों को ग़रीबी और उपहास के पात्र बनाना क्या न्यायपूर्ण है?"[2]

इस तरह की सरल और सीधी अभिव्यक्ति के अनेकानेक उदाहरण कल्कि के निबंधों में पाए जाते हैं।

---

1. *तिरुमकलुम् कलैमकलुम्*, पृ. 163
2. वही, पृ. 165

(4) चिन्तन की शक्ति

श्रीलंका के तमिष़ विद्वान वि. सेलवनायकम अपनी पुस्तक *तमिष़ उरैनडै वरलारु* में लिखते हैं : "जिस प्रकार कहानी लिखने के लिए घटनाएँ मदद करती हैं, उसी प्रकार निबंध लिखने के लिए चिन्तन की शक्ति सहायक बनती है। विस्तृत ज्ञान और गंभीर चिन्तन के अभाव में किसी विषय पर कई पृष्ठोंवाली पुस्तक लिखना असंभव है। पिष्टपेषण के दोष से बचकर और चुने हुए विषय पर कई कोणों से दृष्टि डालकर विस्तार से पुस्तक लिखना सभी के वश की बात नहीं है।" (पृ. 134-135)

इस विचार को कल्कि के निबंध-संग्रह सही सिद्ध करते हैं। तमिष़ संगीत के प्रचार के लिए जो आंदोलन चला, उसके पक्ष में कल्कि ने समय-समय पर लेख लिखे थे। वे विचारोत्तेजक लेख विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। लोग समझते हैं कि राजा सर अण्णामलै चेट्टियार (अण्णामलै विश्वविद्यालय के संस्थापक) ने ही तमिष़ संगीत के प्रचार के आंदोलन का श्रीगणेश किया था, लेकिन यथार्थ यह है कि चेट्टियार जी के कई वर्ष पहले से ही कल्कि तमिष़ संगीत का पक्ष लेकर अपने निबंधों के द्वारा मौलिक और गंभीर विचारों को दृढ़ता के साथ अभिव्यक्त करके आ रहे थे। एक उदाहरण देखिए :

> "तमिलनाडु के संबंध में बोलते समय भिन्न-भिन्न लोग उसकी अलग-अलग विशेषताओं का ज़िक्र करते हैं। तमिष़ भाषा को ही लीजिए। अगर कोई कहे कि तमिष़ में जैसी साहित्यिक रचनाएँ हैं, वैसी रचनाएँ संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं हैं, तब वह विवादास्पद विषय बन सकता है। वज़ह यह है कि कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि तमिष़ की साहित्यिक रचनाओं से भी बढ़कर उत्तम साहित्यिक ग्रंथ अन्य भाषाओं में होते हैं। वे प्रमाण भी प्रस्तुत कर सकते हैं, लेकिन दो कलाएँ ऐसी हैं, जिनमें तमिलनाडु अनुपम है। इस पर किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती।
>
> "तमिलनाडु में शिल्पकला की अभिव्यक्ति के शिखर माने जाने योग्य विशालकाय मंदिर हैं। ऐसी कलाकृतियाँ दुनिया में और कहीं नहीं होतीं।
>
> तमिलनाडु में जो कर्नाटक (पारंपरिक) संगीत-पद्धति प्रचलित है, उतने ऊँचे स्तर का संगीत संसार में और कहीं प्रचलित नहीं है।
>
> "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति और यूरोप के संगीत को भी तमिष़ लोग सीखकर उसमें दक्षता हासिल कर सकते हैं।
>
> लेकिन बहुत प्रयत्न करने पर भी किसी अन्य देश का महान संगीतज्ञ भी कर्नाटक संगीत के किसी प्रधान राग का विस्तार से आलाप नहीं कर पाएगा।"[1]

---

1. *संगीत योगम्*, पृ. xv-xvi

कर्नाटक संगीत की महिमा से इस प्रकार हमें परिचित कराने के बाद कल्कि सप्रमाण इस सच्चाई को स्थापित करते हैं कि कर्नाटक संगीत वास्तव में तमिलनाडु की अपनी संगीत पद्धति है। इस संबंध में उनके निम्नलिखित विचार मनन करने योग्य हैं :

"हज़ार वर्ष पहले अप्पर, संबंधर, सुंदरर आदि शैव संतों ने अपने स्तुति गीतों के द्वारा जिस अद्‌भुत संगीत कला को अभिव्यक्ति दी, वही संगीत कावेरी और ताम्रपर्णी के तटों के आसपास की जगहों पर बसनेवाले संगीतज्ञों के द्वारा विकसित होकर वर्तमान उन्नत अवस्था को प्राप्त हो गया है।

"इसलिए तमिष़ संगीत के समर्थक यह तर्क करते हैं कि तमिलनाडु में संगीत कला की वृद्धि तमिष़ भाषा के द्वारा करनी चाहिए तथा तमिलनाडु में होनेवाले संगीत के कार्यक्रमों में तमिष़ गीतों को ही अधिकाधिक संख्या में गाना चाहिए। उनका यह तर्क न्यायसंगत है। ऐसे न्यायपूर्ण आंदोलन का विरोध करना और (संगीत के लिए कम उपयुक्त भाषा कहकर) तमिष़ भाषा का निरादर करके बोलना बहुत बड़ी ग़लती है। इसमें तिल भर भी संदेह नहीं है।"[1]

यहाँ तमिष़ संगीत के संबंध में पक्षपात रहित होकर कल्कि ने अपने गहरे चिन्तन को प्रकट किया है।

उच्च स्तर के नाटक और अचल फ़िल्मों का मूल्यांकन करते हुए कल्कि ने पत्रिकाओं में समय-समय पर समीक्षाएँ लिखी हैं। उनमें कल्कि के बहुत-से मौलिक विचारों का समावेश हुआ है। उदाहरण के लिए, तमिष़ के मशहूर हास्य अभिनेता एन. एस. कृष्णन द्वारा निर्मित 'वल्लतंबि' फ़िल्म की समीक्षा करते समय कल्कि मौलिक ढंग से आस्तिक की परिभाषा देते हैं। उनका कहना है :

"इन्सान को मंदिरों में जाकर पूजा-पाठ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे अन्य बाहरी धार्मिक कृत्यों का पालन करना भी ज़रूरी नहीं है। भगवान बुद्ध, ईसा मसीह और महात्मा गाँधी की स्तुति करते हुए उनके द्वारा दिखाए मार्ग पर कोई अपना जीवन चलाए, तो वही वास्तव में आस्तिक है।"[2]

तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्यमंत्री अण्णादुरै को तमिलनाडु का बर्नाड शॉ पुकारकर कल्कि उनकी प्रशंसा करते थे। उनकी फ़िल्म 'वेलैक्कारी' (नौकरानी) की समीक्षा करते समय भी कल्कि ने सच्ची आस्तिकता की व्याख्या की है, जो इस प्रकार है :

---

1. *संगीत योगम*, पृ. xvi-xvii
2. *कलै चेलवम*, पृ. 49

"अगर ईश्वर पर हमारा विश्वास वास्तविक हो, तो नास्तिकों के प्रचार से वह डगमगाएगा नहीं। हमें ईश्वर के समर्थन में तर्क करने की कोई ज़रूरत नहीं है। ईश्वर के अस्तित्व को न माननेवालों के सभी तर्कों को सुनने के बाद भी ईश्वर पर विश्वास अक्षुण्ण रहे, तो वही आस्तिकवाद है। बुद्धि पर परदा डालकर किसी को ईश्वर पर विश्वास करने के लिए बाध्य करना सचमुच की आस्तिकता नहीं है।"[1]

इस तरह के मौलिक और प्रगतिशील विचारों को कल्कि के निबंधों में जगह-जगह देख सकते हैं। संक्षेप में कहें, तो कल्कि ने सरल भाषा को दीपक का कटोरा, साहित्यिक रस को घी, सुबोध अभिव्यक्ति को बत्ती और चिन्तन को लौ के रूप में लेकर अपने निबंध रूपी दीपों को तमिष़ साहित्य-जगत् में झिलमिलाने दिया।

1. वही, पृ. 52

5
कल्कि के रेखाचित्र

"विदेशी भाषाओं के साहित्य में रेखाचित्र को एक रत्न के सदृश श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। वह अब तमिलनाडु में भी स्थापित और प्रचलित हो गया है।"

क.ना. सुब्रह्मण्यम[1]

अंग्रेज़ी में ए.जी. गार्डिनर द्वारा लिखित रेखाचित्रों के दो संग्रह प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हुए। उनके नाम हैं *पिलर्स ऑफ सोसाइटी* (समाज के स्तंभ) तथा *प्राफ़ेट्ज़, प्रीस्ट्ज़ एंड किंग्ज़* (पैग़ंबर, पादरी और नरेश)। इन शब्दचित्रों में वर्णित व्यक्ति जीवन में सफलता-प्राप्त महापुरुष थे। ये संग्रह प्रसिद्ध तमिष़ लेखक व.रा. (व. रामस्वामी) को बहुत पसंद आ गए। फलतः उनके मन में उसी क़िस्म के शब्दचित्र तमिष़ में लिखने की बड़ी इच्छा हुई। इस प्रकार रेखाचित्र नामक नए साहित्यिक रूप का आगमन तमिष़ में हुआ।

रेखाचित्र के लिए तमिष़ में नडैचित्रम (चलता-फिरता चित्र) शब्द प्रचलित हो गया। व.रा. ने इस विधा के अंतर्गत तीन संग्रह तैयार किए, जिनके नाम हैं *नडैचित्रम* (1900), *तमिष़ पेरियोर्गळ* (तमिष़ के महापुरुष—1943) और *वाष़्कै विनोदंगळ* (जीवन की विचित्रताएँ—1947)। व.रा. ने इन संग्रहों में जीवन में परिश्रम के बल पर उन्नति करनेवाले महापुरुषों का विवरण प्रस्तुत किया। साथ-साथ निम्न स्तर के ग़रीबों और सामान्य लोगों की झाँकियाँ भी प्रस्तुत कर दीं। इस विधा के अंतर्गत मामूली मनुष्यों का भी वर्णन होना एक क्रांतिकारी क़दम था।

तमिष़ पाठकों के द्वारा व.रा. के रेखाचित्रों का अच्छा स्वागत हुआ। इसे देखकर कल्कि के मन में भी रेखाचित्र लिखने की कामना पैदा हुई। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने कई रेखाचित्र लिखे, जिनका संग्रह *यार् इन्द मलिदर्कल* (कौन हैं ये मनुष्य) नाम से निकला।

---

1. *पडित्तिरुक्किरीर्कळा?* (क्या आपने पढ़ा है?), भाग 1 (1957), पृ. 72

कल्कि के रेखाचित्र

संसार में चार प्रकार के लोग होते हैं। प्रथम प्रकार के लोग वे हैं, जो रोज़-रोज़ मेहनत हरेक रोज़ का भोजन जुटा पाते हैं। वे बेकार की गपशप में समय गँवाते हैं; मुसीबतों में फँसकर दुख भोगते हैं; दूसरों को तकलीफ़ देकर उनको भी दुखी बना डालते हैं; कालांतर में बाल के पक जाने पर वे बुढ़ापे को प्राप्त कर लेते हैं। अंत में एक दिन वे मर भी जाते हैं। ऐसे लोगों को महाकवि भारती उपहास के लायक़ मनुष्य पुकारते हैं।

दूसरे प्रकार के लोग वे हैं, जिनकी सामान्य ज़रूरतों की पूर्ति होने में कोई अड़चन नहीं है, लेकिन उनके पास जीवन का कोई लक्ष्य नहीं होता। उनके बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि वे आए, कुछ समय ठहरे, फिर सदा के लिए चले गए। इनको हम मामूली मनुष्य पुकार सकते हैं।

तीसरी कोटि में वे लोग आते हैं, जो अपने जीवन का अधिकांश भाग खाने-पीने में, ओढ़ने-पहनने में, सोने-आराम करने में ख़र्च कर डालते हैं। इनको मनमौजी और फ़िज़ूल आदमी पुकारेंगे।

चौथे प्रकार के लोग वे हैं, जिनका दिल राई के बराबर अत्यंत छोटा होता है। वे हमेशा हर बात की शिकायत करते रहते हैं, चाहे संबंधित व्यक्ति ईश्वर ही क्यों न हो, हरेक की शिकायत करके लिखना-बोलना इनकी आदत है।

संसार के अधिकांश लोग इस वर्गीकरण के अंतर्गत आ जाते हैं। फिर भी उपर्युक्त वर्गीकरण से परे इने-गिने ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं, जिन्होंने अपने जीवन में विपत्तियों और दुःखों पर विजय पाकर कई उपलब्धियाँ हासिल कीं। जीवन के मार्ग पर पड़े हुए बाधा रूपी पत्थरों को उठाकर वे लोग उनकी मदद से आगे बढ़ने की सीढ़ियाँ निर्मित करके सफलता के शिखर पर पहुँचकर प्रसिद्ध हो गए। वे लोग समाज पर अमिट छाप छोड़कर गए हैं। ऐसे 41 लोक-प्रसिद्ध व्यक्तियों का परिचय रेखाचित्र की शैली में कल्कि ने *यार् इंद मनिदऱ्कल* शीर्षक संकलन में दिया है। उन्होंने इस संकलन में कला, साहित्य, फ़िल्म, पत्रकारिता, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों में जिन व्यक्तियों ने प्रशंसनीय कार्य कर दिखाया है, उनके रेखाचित्र खींचे हैं। इन रेखाचित्रों के ज़रिए कल्कि ने उन सफल व्यक्तियों के बारे में अपने विचार और मूल्यांकन प्रस्तुत किए हैं।

यार् इंद मनिदऱ्गल का प्रथम संस्करण भारती प्रकाशन द्वारा 1957 में प्रकाशित हुआ। पुस्तक का नाम ज़्यादा आकर्षक नहीं है और यह शीर्षक पुस्तक की विषयवस्तु पर प्रकाश नहीं डालता। इसलिए कल्कि द्वारा लिखित उच्च स्तर की पुस्तक होने पर भी यह संकलन तमिष़ लोगों के बीच में अधिक प्रचलित नहीं हुआ।

अब कल्कि के रेखाचित्रों की बनावट और विशेषताओं पर उदाहरणसहित विचार करेंगे।

व.रा. (व. रामस्वामी) तमिष़ में पहले पहल रेखाचित्र लिखकर इस साहित्यिक रूप के आविर्भाव के मूल कारण बने। कल्कि तमिष़ में रेखाचित्र के विकास के लिए सहायक हुए। दोनों लेखकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार अलग-अलग शैली में रेखाचित्र खींचे हैं। तमिष़ भाषा के शीतल समीर उपाधि से विभूषित तिरु.वि. कल्याणसुंदर मुदलियार (तिरु.वि.क.) के बारे में व.रा. और कल्कि दोनों ने रेखाचित्र खींचे हैं। उन रेखाचित्रों की तुलना से दोनों लेखकों की लेखन शैली में जो फ़र्क़ है, वह स्पष्ट हो जाता है।

तिरु.वि.क. के बारे में व.रा.

"दुग्ध-धवल खादी पोशाक धारण करके, बाएँ हाथ की तर्जनी को चेतावनी के संकेत के रूप में आगे करते हुए, सिर पर शिखा और माथे पर चंदन के टीका सहित उधर जो सज्जन शब्दों में शहद घोलकर भाषण दे रहे हैं, क्या आप उनको जानते हैं? इस तरह बड़े ही मुलायम स्वर में जो बोल रहे हैं, वे ही कल्याणसुंदर मुदलियार जी हैं।"[1]

तिरु.वि.क. के बारे में व.रा. का रेखाचित्र इस प्रकार शुरू होता है। संबंधर नामक शैव संत एक स्तोत्र गीत में शिवजी का परिचय देते समय उनके बाहरी रंग-रूप का ही वर्णन करते हैं। वैसे ही ऊपर के रेखाचित्र के अंश में तिरु.वि.क. का परिचय उनके बाहरी रूप वर्णन द्वारा ही किया गया है।

तिरु.वि.क. के बारे में कल्कि

"तिरु.वि.क. तमिष़ भाषा तथा तमिष़ लेखकों के परिवार के लिए पिता-तुल्य थे। मज़दूरों और श्रमजीवियों के लिए माता सदृश थे। जीवमात्र के कल्याण के प्रति अपनी सद्‌भावना के कारण वे ब्राह्णोत्तम जैसे माने जाने योग्य बने। वे सेवा-कार्य को ही अपना जीवन-धर्म मानकर उसका पालन करते थे। वे अपने लिए नहीं दूसरों की भलाई के लिए जीते थे। वे जीवन भर 'प्रेम ही शिव है' के सिद्धांत में निमग्न रहे। अब निधन पर वे प्रेम और शिव में घुलमिल गए।"[2]

यह गद्यांश 'तमिष़ के पिता तिरु.वि.क.' शीर्षक से कल्कि ने जो रेखाचित्र खींचा है, उसका प्रारंभिक अंश है। इस रेखाचित्र में उन्होंने कहीं भी, भूलकर भी जाति सूचक शब्द 'मुदलियार' का प्रयोग नहीं किया है। सर्वत्र तिरु.वि. कल्याणसुंदर,

---

1. *तमिष़ पेरियोर्‌कल*, पृ. 49-50
2. *यार्‌ इंद मनिदर्‌कल*, पृ. 174

कल्याणसुंदरनार, कल्याणसुंदर ऋषि, दाता कल्याणसुंदरर, ज्ञानी, साधु पुरुष आदि शब्दों का ही प्रयोग करके तिरु.वि.क. के बाहरी और आंतरिक जीवन की पवित्रता का परिचय दिया है।

यह एक अच्छा रेखाचित्र है क्योंकि एक अच्छा रेखाचित्र संबंधित व्यक्ति के बाहरी रूप-रंग के वर्णन मात्र तक न रुककर उसके जीवन के सर्वांगीण कार्य और उसके समूचे व्यक्तित्व को सरस और सूक्ष्म ढंग से चित्रित करेगा।

इसी रेखाचित्र के आगे का एक अंश देखिए :

"नायन्मार नामक तिरसठ शैव संतों ने (तिरु.वि.क. को) निमंत्रण दिया होगा कि आप हमारे स्वर्ग में पधारकर चौंसठवें संत के रूप में हमारे साथ रहा करें। आऴ्वार नामक बारह वैष्णव संतों ने निमंत्रण दिया होगा कि आप ऊपर पधारकर तेरहवें आऴ्वार के रूप में हमारे साथ बस जाएँ।
बौद्ध भिक्षुओं, जैन मुनियों और ईसाई तपस्वियों ने भी अपने-अपने स्वर्ग में पधारने के लिए निमंत्रण दिया होगा।
तब तिरु.वि.क. ने उत्तर दिया होगा, 'मैं इतनी बड़ाई के योग्य नहीं हूँ। मैं स्वर्ग में रहने के बजाय तमिलनाडु को लौटकर अपना सेवा-कार्य जारी रखना चाहूँगा।'"[1]

रेखाचित्र में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

तमिऴ् के प्राचीन ग्रंथ 'पुर नानूरुं' (बहिर्जगत् के जीवन से संबंधित 400 पद्य) में कवियत्री अव्वैयार, अदियमान नेडुमान अंचि नामक नरेश की दानशीलता के बारे में कहती हैं कि दान की प्रतीक्षा करके उसके पास,

"एक दिन जाएँ, दो दिन जाएँ,
कई दिन जाएँ लगातार,
दो-चार जन साथ लेकर जाएँ,
तब भी प्रथम दिन जैसे ही वह
दान देने को इच्छुक रहता।" (पद्य 101)

इसी प्रकार कल्कि ने एक दिन या दो दिन नहीं, कई दिन कई बार मिलते-जुलते रहने पर, जो सज्जन उनको हर वक़्त प्रभावित करते थे, उनके बारे में ही रेखाचित्र खींचे हैं। उन सज्जनों का वर्णन कल्कि इस ढंग से करते थे कि उनके उल्लेखनीय गुण, उच्च स्तर का आचरण, असाधारण क्षमता आदि पूर्णतः प्रकट हो जाते थे।

---

1. *यार् इंद मनिदर्गल*, पृ. 33

व.रा. के बारे में कल्कि

"व.रा. के लिए महाकवि भारती ही माता-पिता-गुरु-ईश्वर सब कुछ थे। भारती की महानता से सारे भारत और संसार को अवगत कराना ही उनका लक्ष्य था। तमिष़ भाषा के प्रति प्रेम उनका श्वास बना हुआ था। उनके मन, बुद्धि और चिन्तन में समाज सुधार का आवेश भरा रहता था। देश की आज़ादी की चाह उनके प्राण कही जा सकती थी। उनकी आत्मा स्वाभिमान के तत्वों से निर्मित थी। लेखकों के, ख़ासकर तमिष़ लेखकों के समूह को वे एक अलग मज़हब जैसा देखते थे और लेखकों की उन्नति उस मज़हब का लक्ष्य था।"[1]

इस प्रकार कल्कि तमिष़ साहित्य के क्षेत्र में रेखाचित्र के आगमन के कारणकर्ता व.रा. की प्रशंसा करते हैं। इस रेखाचित्र में कल्कि ने व.रा. के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से और स्पष्ट रूप से दिखाया है। आगे भी तारीफ़ का पुल बाँधते हुए कल्कि व.रा. के लिए आधुनिक तमिलनाडु के प्रथम लेखक, तमिष़ लेखकों के सिरमौर, तमिष़ लेखकों के शाश्वत नेता, आचार्य आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। इन आदरसूचक शब्दों के द्वारा कल्कि व.रा. के पांडित्य, लेखन-कौशल, आत्मविश्वास, आत्माभिमान, कार्य क्षमता आदि पर प्रकाश डालते हैं। इसलिए इस रेखाचित्र को पढ़नेवाले व.रा. को कभी भूल न पाएँगे।

और एक विशेषता यह है कि कल्कि ने जन्म, पालन-पोषण-मृत्यु का सपाट क्रम अपनाकर यह रेखाचित्र नहीं लिखा है। वे यह नहीं बताते कि व.रा. के जीवन में हर साल क्या हुआ। फिर भी एक उत्तम लेखक के रूप में व.रा. के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को कल्कि ने इस रेखाचित्र में नौ पृष्ठों में चुस्त ढंग से प्रस्तुत कर दिया है।

रेखाचित्र की उपयोगिता

कल्कि ने ऐसे व्यक्तियों को ही रेखाचित्रों के लिए वर्ण्य विषय के रूप में चुना था, जिन्होंने जीवन में सफल होकर कई उपलब्धियाँ हासिल की थीं। उन रेखाचित्रों का अध्ययन करने पर पाठकों को अनेक लाभ मिलते हैं। उनके मन में जीवन के प्रति आस्था पैदा होती है। उनका व्यक्तित्व निखर उठता है और उज्ज्वल बनता है। उनका चिन्तन धीरे-धीरे सुसंस्कृत और प्रौढ़ बन जाता है। इस तथ्य की ओर कल्कि स्वयं राइट आनरबिल वी.एस. श्रीनिवास शास्त्री (1869-1946) पर लिखे अपने रेखाचित्र में इशारा करते हैं।

---

1. *यार् इंद मनिदर्कल*, पृ. 33

"शास्त्रीजी जैसे माननीय सज्जन किसी देश में जन्म लेकर जीवित मात्र रहें, इतना भी उस देश के लिए लाभदायक सिद्ध होगा। वे समाज सेवा का कोई काम हाथ में लेकर चुपचाप बैठे रहें, तब भी उनके परिष्कृत और व्यवस्थित जीवन से प्रेरणा पाकर उनका देश लाभान्वित होगा। उनके देश के निवासियों का जीवन रमणीय बनता है, उच्च स्तर को पहुँचता है और दीप्त हो उठता है।"[1]

श्रीनिवास शास्त्रीजी कई विषयों में महापंडित थे। वे एक महान शिक्षक थे। बड़े सज्जन पुरुष थे। ज़ोरदार वक्ता थे। अंग्रेज़ी में उनका ज्ञान आश्चर्यजनक और अनुपम था। इस संबंध में कल्कि अपने रेखाचित्र में एक रोचक घटना का उल्लेख करते हैं :

"सभी लोग जानते हैं कि राइट आनरबिल शास्त्रीजी अंग्रेज़ी भाषा में अपार पांडित्य रखते थे। जब गाँधीजी ने *हरिजन* पत्रिका का अंग्रेज़ी संस्करण शुरू किया, उसका प्रथम अंक शास्त्रीजी के पास भेजा। शास्त्रीजी ने उसमें 27 ग़लतियाँ पहचानकर गाँधीजी को सूचित कर दिया। शास्त्रीजी की मेज़ पर हमेशा वृहद् वेब्स्टर शब्दकोश विराजमान रहता था।"[2]

रेखाचित्र के इस अंश को पढ़नेवालों के मन में शास्त्रीजी के जैसे ही किसी भाषा में पांडित्य प्राप्त करने की प्रेरणा पैदा होगी। ग़लत लिखनेवाला चाहे बड़े से बड़ा आदमी हो, उसकी ग़लतियों की ओर इशारा करने की मानसिक दृढ़ता भी इस रेखाचित्र क्रे अध्ययन से मिलेगी।[3]

जी.डी. नायुडु के बारे में कल्कि

और एक रेखाचित्र को लेंगे, जो पाठकों के मन में आशा की ज्योति को प्रज्वलित करने में सक्षम है। यह रेखाचित्र जी.डी. नायुडु (1893-1974) के बारे में है, जो आश्चर्यजनक वैज्ञानिक खोजों के लिए प्रसिद्ध हुए।[4] इसका शीर्षक है 'बात अनोखी मगर है सच'। कल्कि लिखते हैं :

---

1. *यार् इंद मनिदर्कल*, पृ. 7-8
2. वही, पृ. 8-9
3. (अनुवादक की ओर से) : इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री विन्स्टन चर्चिल ने एक भाषण में ampgibian के अनुकरण पर Erifibian शब्द का प्रयोग किया था। शास्त्रीजी ने भारत से तार भेजा कि वह ग़लत है और Eribian का प्रयोग करना चाहिए। चर्चिल भी अंग्रेज़ी में महापंडित थे। कुछ अंग्रेज़ी प्रोफ़ेसरों से सलाह-मशविरा करने के बाद चर्चिल ने शास्त्रीजी को पत्र लिखा कि आपका शब्द ही ठीक है।
4. इनका नाम पहले दुरैस्वमी था। बाद में वह दामोदरन नायुडु बन गया।

"मेरी यह सिफ़ारिश है कि जो युवक कॉलेज में पढ़ने के लिए सीट न मिलने की वजह से हताश हैं, वे सब कोयंबुत्तूर शहर में जाकर श्री जी.डी. नायुडु से मिलकर आएँ। इस तरह यात्रा के लिए ख़र्च न कर सकनेवालों को मेरा सुझाव है कि कम से कम नायुडुजी द्वारा लिखित *नान कंड उलकम* पुस्तक ख़रीदकर पढ़ डालें।

"श्री जी.डी. नायुडु ने किसी इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ने के लिए कभी अर्ज़ी तक नहीं डाली थी। किसी कॉलेज की छाया तक उन पर नहीं पड़ी थी। यही क्या, उन्होंने हाईस्कूल की पढ़ाई भी नहीं की।

"लेकिन वे चार बार सारा संसार घूमकर आए हैं। अमेरिका में अमेरिकी लोगों की सभा में अंग्रेज़ी में ज़ोरदार भाषण किए हैं। जीवन के गूढ़ सिद्धांतों और आध्यात्मिक विषयों पर उनके भाषण हुए हैं। यूरोप और अमेरिका में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और बड़े-बड़े उद्योगपतियों के साथ विज्ञान और तकनीकी पर उन्होंने विचार-विमर्श किया है।"[1]

जी.डी. नायुडु के बारे में कल्कि के रेखाचित्र को वर्तमान युवा पीढ़ी को पढ़ना चाहिए और उसकी पंक्तियों को पुरालेख जैसे दिल पर अंकित कर लेना चाहिए। स्कूल में तीसरी कक्षा तक ही शिक्षित होने पर भी जीवन में प्राप्त तजुर्बों के द्वारा सब कुछ सीखकर वे संसार के श्रेष्ठ अभियंताओं को भी सलाह देने योग्य हैसियत को प्राप्त कर सके। उचित रीति से शिक्षित युवक लोग मन लगाकर प्रयत्न करें, तो वे कौन-सी उपलब्धि हासिल नहीं कर सकते? यह सवाल ही कल्कि अपने इस रेखाचित्र के द्वारा युवा वर्ग से पूछना चाहते हैं।

रेखाचित्र के अंग

कल्कि अपने रेखाचित्रों में शीर्षक, प्रारंभ, मध्य भाग, उपसंहार आदि सभी तत्त्वों का कलात्मक ढंग से पालन किया है। इसके कई उदाहरण उनके रेखाचित्रों से दिए जा सकते हैं। एक रेखाचित्र को लेंगे, जिसका शीर्षक बहुत ही सार्थक बन पड़ा है।

सरस्वतीबाई पर रेखाचित्र

तमिलनाडु में कथा-प्रवचन के क्षेत्र में सरस्वतीबाई नामक महिला कलाकार ने अपनी विशिष्ट छाप अंकित की थी। वे वक्तृता में क्षमता, संगीत का अच्छा अभ्यास, बहुभाषा ज्ञान, जीवन में उच्च स्तर की नैतिकता, अपार भक्ति भावना, गुरु के प्रति श्रद्धा आदि अनेक विशिष्ट गुणों से विभूषित थीं। वे पंडित कृष्णाचार्य की शिष्या थीं।

---

1. *यार् इंद मनिदर्कल*, पृ. 113-114

पुरुष कलाकारों से आच्छादित कथा-प्रवचन के क्षेत्र में सरस्वतीबाई को उनके विरोधों और उनके साथ प्रतिस्पर्धाओं का सामना करना पड़ा, तो भी वे अपना धैर्य न खोकर, साहस के साथ डटे रहकर जीवन में धीरे-धीरे, सीढ़ी पर सीढ़ी पैर रखकर आगे वढ़ीं। उन्होंने कथा-प्रवचन के क्षेत्र में स्मरणीय कार्य किया। इसलिए कल्कि ने इस रेखाचित्र का शीर्षक 'पेण् कुलत्तिन् वेट्रि' (नारी वर्ग की विजय) रखा है। सरस्वतीबाई को कल्कि एक वीरांगना के रूप में देखकर उनका वर्णन करते हैं :

> "नारियों में साहसपूर्ण काम कर दिखानेवालों को वीरांगना पुकारना हमारी परंपरा है। पौराणिक कथाओं में सीता, द्रौपदी, सुभद्रा, सत्यभामा आदि अनुपम वीरांगनाओं का वर्णन हुआ है। राजपुत्र वंश की स्त्रियाँ पति और पुत्रों को युद्ध भूमि में भेज देती थीं और पति के मारे जाने पर खुद अग्नि में कूदकर सीत हो जाती थीं। वे भी इतिहास में वीरांगनाएँ कही जाती हैं। झाँसी की रानी जैसी वीरांगनाएँ भी हुई जिन्होंने रणक्षेत्र में पहुँचकर ख़ूब युद्ध करके मृत्यु को प्राप्त किया था। तब समाज में प्रचलित अर्थहीन रूढ़ियों और अंधविश्वास-जन्य कठोर नियंत्रण को तोड़-फेंककर, प्रगति के पथ पर क़दम बढ़ाकर, दूसरों को भी मार्गदर्शन देनेवाली स्त्रियों को भी हम वीरांगनाएँ पुकार सकते हैं न? हमारे समय में दक्षिण भारत में जन्म लेनेवाली ऐसी वीरांगनाओं में श्रीमती सरस्वतीबाई को उच्च स्थान प्राप्त है।"[1]

कई अन्य रेखाचित्रों के शीर्षक सार्थक और आकर्षक बन पड़े हैं, जैसे, रहेंगे हमेशा, गूँज उठेंगे हृदय में (टी.के. चिदंबरनाथ मुदलियार पर); ओझल हुआ वह महापर्वत (स्वच्छ तमिष़ के हिमायती मरैमलै जी पर, जिनका असली नाम वेदाचलम था); देवि का देव हो जाना (कवि देसिक विनायकम पिळ्ळै, संक्षेप में देवि के निधन पर); चलाएँगे जहाज़, पार करेंगे पारावार (चिदंबरम पिळ्ळै पर, जिन्होंने अंग्रेज़ सरकार से डरे बिना स्वदेशी जहाज़ कंपनी चलाई); आदि।

रेखाचित्र का आरंभ

रेखाचित्र में वर्णित नायक की उपलब्धियों के अनुसार उसको एक विशिष्ट ढंग से प्रारंभ करने के कौशल में कल्कि की बराबरी कोई नहीं कर सकता। इस बात को एक आकर्षक उदाहरण द्वारा हम सिद्ध कर सकते हैं।

कर्नाटक संगीत-पद्धति में 'तोडी' एक अद्‌भुत राग है। उसको नादस्वर (लंबी शहनाई जैसा वाद्य) में बजाने में तिरुवावडुतुरै गाँव के राजरत्नम पिळ्ळै अद्वितीय थे।

---

1. *यार् इंद मनिदर्कल*, पृ. 163-164

उनमें अपार कला कौशल भरा रहता था। उसकी अभिव्यक्ति वे बड़े ही कलात्मक ढंग से करते थे। उनके बारे में कल्कि अपना रेखाचित्र इस प्रकार शुरू करते हैं :

"देवों औरं असुरों के बीच दीर्घ काल तक जो युद्ध हुए थे, उनके बारे में आपने सुना होगा।

"इसी प्रकार संगीत के क्षेत्र में सुस्वरों और अपस्वरों के बीच संघर्ष चलने लगा था। ऐसा डर सर्वत्र पैदा हो गया कि इस युद्ध में अपस्वरों की ही जीत होगी। कारण यह था कि सुस्वरों की सेना का हिसाब हो सकता है। उसकी संख्या सीमित है। उसके वीरों की गिनती हो सकती है। उन सैनिकों के खड़े होने के स्थान भी पूर्व निश्चित हैं, लेकिन अपस्वरों की सेना रावण के मूल सैन्य के समान गिनती से परे थी। उस सेना के सिपाही बांबी से निकलनेवाली दीमकों के समान लगातार निकलते-फैलते जाते थे। वे किसी सीमा, किसी नियम, किसी अनुशासन का पालन नहीं करते थे। जब चाहे निकल जाते थे और संगीत के क्षेत्र में जहाँ चाहे वहाँ आक्रमण कर डालते थे।

"इसलिए स्वरों की हालत ख़तरे में पड़ गई। वे भयभीत हो गए कि शायद उनको इस दुनिया से समूल नष्ट हो जाना पड़ेगा। वे सब अपनी माँ संगीत की देवी के पास जाकर अपस्वरों के व्यवहार की शिकायत करने लगे।

"संगीत की देवी अपस्वरों की शरारतों से पहले ही बहुत परेशान थीं। उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा, 'बच्चो, आइए, हम सब ईश्वर के पास जाकर अपना दुखड़ा रोएँगे। वे नादब्रह्म हैं।'

"संगीत की देवी और उनके बच्चे रूपी सुस्वर ईश्वर के पास जाकर 'मुकारी' राग (शोक रस का राग) में अपना दुःख प्रकट करके विलाप करने लगे। नादब्रह्म ईश्वर का दिल पसीज गया। उन्होंने अपने दरबार के कुछ योद्धाओं को आज्ञा दी, 'आप लोग मनुष्य के रूप में भूलोक में उतरकर, अपस्वरों का उन्मूलन कर डालिए और सुस्वरों का शासन स्थापित कर वापस आइए।' इस तरह नादब्रह्म की आज्ञा के अनुसार वे शूरवीर पृथ्वी पर अवतरित हुए। उनमें एक का चित्र ही कल्कि पत्रिका के इस सप्ताह के अंक के मुखपृष्ठ को अलंकृत करता है। इस सुभट का नाम है तिरुवावडुतुरै राजरत्नम पिळ्ळै।"[1]

इस प्रकार, 'नादस्वर चक्रवर्ती' की उपाधिवाले राजरत्नम पिळ्ळै के रेखाचित्र रोचक ढंग से शुरू करनेवाले कल्कि को हम शैली का चक्रवर्ती कह सकते हैं।

अंग्रेज़ी और तमिष़ में हास्य रस के लेख लिखनेवाले एस.वी.वी. (एस.वी. विजयराघवाचार्य) के बारे में कल्कि ने एक रेखाचित्र खींचा है, जिसका शीर्षक है

---

1. *याइ इंद मनिदइगल*, पृ. 97-98

'आसमान के खुले मैदान में'। उनका जन्म तिरुवण्णामलै[1] में हुआ था। कल्कि यह रेखाचित्र इस प्रकार प्रारंभ करते हैं : "एक दिन पोतिगै पहाड़ (सुदूर दक्षिण में है), विन्ध्य पहाड़, नीलगिरि और तिरुवण्णमलै का पहाड़, ये चारों मिलकर गपशप करने लगे।" (ये चार दिशाओं के प्रतीक बनते हैं।)

रेखाचित्र का मध्यभाग

शीर्षक देने में और शुरू करने मात्र में नहीं, रेखाचित्रों के बीच-बीच में पाठक को आकर्षित करनेवाली रोचक बातों को जोड़ने में भी कल्कि अपनी कुशलता प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए 'वीणै शण्मुखवडिवु अम्माल'[2] शीर्षक रेखाचित्र से निम्नलिखित पंक्तियाँ दी जा रही हैं :

"एक बार संगीत के प्रेमियों में एक चर्चा छिड़ गई थी। चर्चा का विषय था : किसकी ध्वनि ज़्यादा मीठी है। जब माता शण्मुखवडिवु वीणा के तारों को छेड़ती है, तब उत्पन्न होनेवाली संगीत की ध्वनि एक ओर और दूसरी ओर, उनकी बेटी सुब्बुलक्ष्मी के कंठ से बाढ़-से निकलनेवाले गीतों की ध्वनि, इन दोनों में अधिक मीठी ध्वनि कौन-सी है।

"तिरुवल्लुवर कहते हैं कि लोगों के लिए सबसे सुखद अनुभव इसका पता लगना ही हो सकता है कि किसी क्षेत्र में उनके बच्चे उनसे भी ज़्यादा होशियार और योग्य हैं। संसार में ऐसे कलाकार विरले ही होते हैं, जो अपनी संतान को कला के क्षेत्र में अपने से भी ऊँचा उठकर प्रसिद्ध होने के दृश्य को देखने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। श्रीमती शण्मुखवडिवु समझ गईं कि उनकी बेटी के माध्यम से उनको ऐसा सौभाग्य मिलनेवाला है। उसको दृढ़ विश्वास हो गया कि गायन-कार्यक्रमों में उनको जो प्रसिद्धि नहीं मिल सकी, उसे उसकी पुत्री प्राप्त कर लेगी।"[3]

मदुरै शहर की प्रसिद्ध वीणावादक श्रीमती शण्मुखवडिवु संतान की दृष्टि से सौभाग्यशाली थी। माधुर्यपूर्ण वाणी से संपन्न उनकी बच्ची सुब्बुलक्ष्मी आगे चलकर कर्नाटक संगीत की साम्राज्ञी मानी जाने लगी। जब शण्मुखवडिवु को यह निश्चय हो गया कि उसकी पुत्री की कीर्ति संगीत के क्षेत्र में अच्छी तरह स्थापित हो गई, तब से उन्होंने संगीत के समारोहों में वीणा का कार्यक्रम देना बंद कर दिया। वे अपनी बेटी के बढ़ते यश को अपना ही यश मानकर प्रसन्न और संतुष्ट हो जाया करती थीं।

एक बार मदुरै में एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही थीं। आयोजक ने उनका परिचय देते हुए कहा कि ये गायिका श्रीमती शण्मुखवडिवु की

---

1. यह शहर रमण महर्षि के कारण विख्यात है।
2. शण्मुखवडिवु प्रसिद्ध गायिका एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी की माताजी हैं। वे वीणा बजाने में बेजोड़ थीं।
3. *यार् इंद मनिदर्कल*, पृ. 197-98

सुपुत्री हैं। इनको प्रशिक्षित करके और संगीत के क्षेत्र में उपलब्ध कराके शण्मुखवडिवु ने महान कार्य किया है। भाषण ख़त्म कर आयोजक ने शण्मुखवडिवु जी को माला पहना दी। उपस्थित लोग पुलकित हो उठे। उस समय श्रीमती शण्मुखवडिवु 65 साल की आयु की हो चुकी थीं। उनका स्वास्थ्य गिरा हुआ था। उन्होंने स्वयं को जो माला पहनाई गई, उसे उठाया और अपनी पुत्री के गले में डालकर आनंद के आँसू बहाने लगीं।[1]

पाठकों की आँखों को भी गीली बना देनेवाली इस घटना का समावेश रेखाचित्र के मध्य भाग में उपयुक्त जगह पर किया गया है।

रेखाचित्र की समाप्ति

अब आकर्षक समाप्ति के उदाहरण के रूप में एक रेखाचित्र को लेंगे। यह राजा सर अण्णामलै चेट्टियार (1881-1948) के बारे में है। उन्होंने तमिलनाडु में संगीत के कार्यक्रमों में तमिष़ गीतों के ज़्यादा प्रचलन के लिए आंदोलन चलाकर तमिष़ संगीत के विकास के लिए कठोर परिश्रम किया था। वे उत्तम गुणवाले थे; सुसंस्कृत सज्जन थे; विलक्षण प्रतिभावान थे; अतिथियों का बड़ा सत्कार करते थे। अपने मातहत में काम करनेवालों से नरम और सराहनीय व्यवहार करते थे। उनके निधन पर कल्कि ने जो रेखाचित्र लिखा, उसका शीर्षक है 'एक पर्वत अदृश्य हो गया'।

"अचानक एक दिन नीलगिरि पहाड़ ग़ायब हो जाए, तो हमें कैसा लगेगा? ऐसी हालत में वह विशाल पहाड़ जो ख़ाली जगह छोड़कर जाएगा, क्या उसे किसी अन्य वस्तु से भर सकते हैं? कदापि नहीं, जहाँ वह पहाड़ खड़ा था, वह जगह दीर्घ काल तक शून्य ही रहेगी। राजा सर के निधन से तमिलनाडु और तमिष़भाषी समाज ऐसा महसूस करेंगे कि कई वर्ष और उनका जीवित न रह पाना एक भारी क्षति है।"[2]

राजा सर अण्णामलै चेट्टियार से संबंधित यह रेखाचित्र यहाँ समाप्त हो जाने पर भी पाठकों के मन में उस महापुरुष के बारे में विचारों की लहरें उठती रहेंगी। इसका कारण है, इस रेखाचित्र का सशक्त उपसंहार।

रेखाचित्र के विकास का कारणकर्ता

व.रा. की रचनाओं में उनके रेखाचित्रों के संकलन को ही सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में प्रसिद्ध समालोचक क.ना. सुब्रह्मण्यम मानते हैं। वे कहते हैं : "विदेशी भाषाओं के साहित्य में एक आभूषण जैसा माना जानेवाला रेखाचित्र तमिष़ में भी आकर एक

1. *यार् इन्द मनिदर्गल्*, पृ. 20
2. वही, पृ. 25।

स्थायी साहित्यिक विधा बन गया। इसका श्रेय व.रा. को है।"[1] हम व.रा. के नाम के साथ कल्कि का नाम भी जोड़ सकते हैं। अगर व.रा. को तमिष़ में साहित्यिक स्तर के रेखाचित्र के जनक मानें, तो उसका पालन-पोषण करके उसका विकास करनेवाले कल्कि ही थे।

जी.डी. नायुडु से संबंधित रेखाचित्र में कल्कि ने उनकी पुस्तक 'नान् कंड उलकम' (मेरी देखी हुई दुनिया) के बारे में इस प्रकार अपना मंतव्य प्रकट किया था : "हमारे युवा वर्ग की तरक़्क़ी में दिलचस्पी रखनेवाली हमारे मद्रास प्रांत की सरकार को चाहिए कि वह नायुडु साहब की पुस्तक की दस हज़ार प्रतियाँ ख़रीद लें। फिर दस हज़ार पुस्तकालय खोलकर हरेक को एक प्रति पहुँचा दे। इससे असीम लाभ होगा।"[2]

जी.डी. नायुडु की पुस्तक की प्रशंसा में कल्कि ने जो पंक्तियाँ लिखी हैं, वे संयोग से उनके रेखाचित्रों के संकलन *यार् इंद मनिदर्गल* के संदर्भ में भी पूर्ण रूप से उपयुक्त सिद्ध होती हैं।

1. *पडित्तिरुक्किरीरकला*, पृ. 72
2. *यार् इंद मनिदर्गल्*, पृ. 117

6

हास्य लेखक कल्कि

"ऐसा प्रतीत होता है कि कल्कि ने पाठकों के मन पर अपनी बात ज़ोर से अंकित करने के लिए हास्य को एक साधन के रूप में अधिकतर अपनाया था। यह तरीक़ा तमिष़ के लिए नया था।"

—वी. सेल्वनायकम[1]

तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्यमंत्री अण्णादुरै ने कल्कि की उपलब्धियों की प्रशंसा करते हुए एक बार कहा, "तमिष़ गद्य-शैली में हास्य का समावेश करनेवाले और इतिहास की घटनाओं के प्रति रसोई घर में बंद स्त्रियों के मन में भी दिलचस्पी पैदा करनेवाले लेखक कल्कि थे।"[2]

अर्थात्, अण्णादुरै के विचार में कल्कि तमिष़ भाषा और तमिष़ लोगों की भलाई के लिए दो महान कार्य कर गए हैं। एक है, तमिष़ गद्य-शैली में उच्च स्तर के हास्य का समावेश करना। दूसरा है, रसोईघर में ज़्यादा समय बितानेवाली स्त्रियों को भी तमिलनाडु के इतिहास को चाव से पढ़ने के लिए प्रेरित करना। दूसरे शब्दों में कहें, तो हास्य के प्रति लगाव और इतिहास के प्रति झुकाव, ये दोनों कल्कि के व्यक्तित्व में हाथ में हाथ मिलाए पाए जाते थे। फलस्वरूप उनके लेखन में भी ये तत्त्व प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुए हैं।

ए.वी. सुब्रह्मण्य अय्यर के अनुसार तमिलनाडु के लोग कल्कि के लेखन के द्वारा हास्य रस से परिचित होकर उसका रसास्वादन करने लगे। साथ-साथ वे प्राचीन तमिलनाडु के इतिहास और संस्कृति से भी अवगत हो गए।[3]

अब एक हास्य लेखक के रूप में कल्कि का मूल्यांकन करेंगे।

---

1. *तमिष़ उरै नडै वरलारु*, पृ. 156
2. *एषुत्तुलकिल् अमरतारा* (लेखन जगत में एक चिरंतन नक्षत्र, (सं.) सुभ्रवालन, पृ. 94
3. *तऱ्काल तमिल इलक्किराम* (आधुनिक तमिल साहित्य), पृ. 157

कल्कि और हास्य

कल्कि 'वाक्कु वेट्टै' (वोट का शिकार) नामक अपने एक लेख के शुरू में कहते हैं : "मैं इसी उद्देश्य से लेखन कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ कि मेरे लेखों को पढ़कर पाठक लोग थोड़ा-सा भी हँसकर खुश हो जाएँ, कम से कम मुस्करा तो उठें।"[1] इस स्वीकारोक्ति से हास्य रस के प्रयोग के प्रति कल्कि की सद्भावना और हार्दिक लगाव को हम समझ सकते हैं।

'भारतियिन् नगैचुवै' (भारती और हास्य रस) शीर्षक लेख भी हास्य रस के प्रति कल्कि के अनुकूल रुख़ को सिद्ध करता है। कल्कि इस लेख की शुरुआत गाँधीजी की उस उक्ति से करते हैं कि अगर उनमें हास्य की प्रवृत्ति नहीं होती, तो वे बहुत पहले ही आत्महत्या कर लेते। आगे कल्कि अपना विचार प्रकट करते हैं कि चाहे व्यक्ति के जीवन में हो या राष्ट्र के जीवन में, कहीं भी उन्नति करने के लिए आवश्यक तत्त्वों में हास्य भी एक है।[2]

एक अन्य लेख में कल्कि लिखते हैं : "ईश्वर ने एकमात्र मनुष्य को हँसने की क्षमता दी है। इस हँसने की प्रवृत्ति को उकसाने और उसकी वृद्धि करने के लिए प्रयास करनेवाले सभी लोग ऐसी सेवा करते हैं, जो ईश्वर को पसंद है।"[3]

कुछ दशकों पहले के हास्य अभिनेता एन.एस. कृष्णन के बारे में कल्कि ने यह भविष्यवाणी की : "अगर यह सच है कि दूसरों को हँसानेवाले स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, तो एन.एस. कृष्णन को स्वर्गों में सर्वोच्च स्वर्ग ज़रूर मिल जाएगा। वर्तमान समय में तमिष़भाषी लोगों के जीवन को आनंद से भर देने का कार्य एन.एस. कृष्णन कर रहे हैं।"[4]

एन.एस. कृष्णन की अभिनय कुशलता और उनकी कभी न उबानेवाली हास्याभिव्यक्ति की हार्दिक प्रशंसा करते हुए कल्कि ने समय-समय पर जो लिखा है, उससे प्रकट होता है कि कल्कि के मन में हास्य को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त था। यह भी मालूम होता है कि उच्च स्तर के हास्य को प्रेरित करनेवालों के प्रति उनके मन में आदर का भाव था।

कल्कि का नाम लेते ही पठकों के मन में उनकी विनोदी प्रवृत्ति की याद ही सबसे पहले उभर उठती है। वार्तालाप, लेखन और जीवन, इन तीनों में कल्कि हास्य रस का समावेश कर उसमें तल्लीन हो जाते थे। इसको सिद्ध करने के लिए उनके भाषण, लेखन और जीवन से कई उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

---

1. *एट्टिक्कु पोट्टि*, पृ. 68
2. वही, पृ. 119
3. *कल्कियिन् नगैच्चुवै* (कल्कि का हास्य), (सं.) एस. शंकरन, पृ. 119
4. *यार् इंद मनिदर्गल्*, पृ. 127, 128

भाषण में हास्य

एक बार चेन्नै के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में भाषण देने के लिए कल्कि निमंत्रित हुए थे। प्रिन्सिपल साहब ने उनका परिचय देते समय कहा : “श्री कल्कि को अपने उपन्यासों के लिए कथावस्तु ढूँढ़ते हुए कहीं अन्यत्र जाने की ज़रूरत नहीं है। इस कॉलेज के अहाते में ही वे बहुत-से नायकों और नायिकाओं को देख सकते हैं।”

छात्रगण यह सुनकर उमंग में झूम उठे, तब कल्कि बोलने के लिए खड़े हुए। भाषण शुरू करते समय उन्होंने श्रोताओं को संबोधित किया, “नायको, नायिकाओ।” ज़ोर से तालियाँ बज उठीं, जिसकी ध्वनि कॉलेज के पास के समुद्र तट तक सुनाई पड़ी।[1] इस घटना से पता चलता है कि हास्य रस के वक्ता को अवश्य ही हाज़िर-जवाब होना चाहिए।

एक अन्य सभा में कल्कि को बोलना था। उनके एक तरफ़ की कुरसी पर टि. एम. कृष्णस्वामी अय्यर बैठे थे और दूसरी तरफ़ टि.के. चिदंबरनाथ मुदलियार विराजमान थे। कृष्णस्वामी जी को लोग आदर से ‘तिरुपुकष् मणि’ पुकारते थे (भगवान कार्तिकेय पर तिरुपुकष् नामक स्तोत्रों का भजन करने में अव्वल)। चिदंबरनाथ जी को लोग आदर से ‘रसिक मणि’ पुकारते थे (साहित्य का रसास्वादन करने और कराने में अव्वल)। कल्कि ने अपना भाषण शुरू करते हुए ‘मणि’ (रत्न) शब्द को लेकर मज़ाक़ के अंदाज़ में कहा : “इस तरफ़ तिरुपुकष् मणि बैठे हैं और उस तरफ़ रसिक मणि हैं। इन मणियों की उपस्थिति में बोलने की मेरी क्या हस्ती है? मैं तो ‘पेण् मणि’ तक नहीं हूँ (पेण्मणि माने नारियों में रत्न)। श्रोतागण ज़ोर से हँसने लगे।[2] ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं, जब कल्कि ने बिना प्रयास के, स्वाभाविक रूप से, विनोदपूर्ण बातें करके लोगों को खुश कर दिया है।

पोन्नियिन् पुदलवर नाम से प्रकाशित कल्कि की जीवनी में लेखक सुनदा जी ने लिखा है : “मंच पर भाषण देते समय कल्कि चमत्कारपूर्ण शब्द प्रयोग, मज़ाक़, लघु कथाएँ आदि का प्रयोग करते थे, जिससे श्रोताओं की मंडली में रह-रहकर हास्य की लहरियाँ उठकर फैल जाती थीं। कभी-कभी वे सभा में आने के पहले ही कुछ मज़ाक़ की बातें सोच लेते थे। अन्य हास्योक्तियाँ विशिष्ट वातावरण में अनायास और अचानक आ टपकती थीं। कल्कि अधिकतर अपने भाषण के शुरू में मज़ाक़ की कोई बात करके श्रोताओं को वशीभूत कर डालते थे। (पृ. 619)

मात्र मंच पर नहीं, व्यक्तिगत रूप से किसी से वार्तालाप करते समय भी हास्य रस पूर्ण बातें करना कल्कि का स्वभाव बना हुआ था। एक बार वे चेन्नै में ब्राडवे नामक भीड़ भरी सड़क पर बहुत देर से किसी कारण से खड़े थे। यह देखकर फ़ुटपाथ

---

1. *कल्कि* पत्रिका, 14 अप्रैल 1991, पृ. 64
2. *यार् इंद मनिदर्कल*, पृ. 219

पर ही निवास करनेवाले एक आदमी ने नज़दीक आकर पूछा, "क्यों साहब, आप इतनी देर से यहाँ क्यों खड़े हैं?" कल्कि ने झट जवाब दिया, "क्या पूछा, मैं यहाँ क्यों खड़ा हूँ, यही न? मगर मैं करूँ क्या? किसी ने भी मुझसे बैठने के लिए नहीं कहा। इसलिए खड़ा हूँ।"[1]

एक बार कल्कि हास्य अभिनेता एन.एस. कृष्णन के यहाँ गए। कृष्णन ने पूछा, "पीने के लिए क्या मंगवाऊँ, कॉफी या चाय?" कल्कि ने ज़रा सोचकर कहा, "टीए मधुरम।" एक अर्थ है चाय ही मीठी है। मतलब चाय ही चाहिए। श्लेष यह है कि कृष्णन की धर्मपत्नी का नाम टी.ए. मधुरम था।[2] आगे दोनों में जो वार्तालाप हुआ वह स्वभावतः हास्य रस से सराबोर रहा होगा। कारण यह कि हास्य पात्र के अभिनय में कृष्णन को हिमालय और हास्य लेखन में कल्कि को चक्रवर्ती पुकारा जाता था।

लेखन में हास्य

कल्कि के लेखन में हास्य को जो स्थान मिला था, उस पर अब विचार करेंगे। वे जो भी लिखते थे, चाहे वह कहानी हो, उपन्यास हो या निबंध, उसमें हास्य का समावेश किए बिना वे लिख नहीं पाते थे। कल्कि की रचनाओं में से इन तीनों साहित्यिक रूपों के ऐसे कुछ उदाहरण देखेंगे, जिनसे हास्य लेखन में कल्कि की क्षमता का स्पष्ट रूप से पता चलता है।

कहानियों में हास्य

कल्कि की कहानियों पर शोध कार्य करके डॉक्टरेट की उपाधि से विभूषित मीनाक्षी मुरुगरत्नम ने उपयुक्त उदाहरण देकर ये निष्कर्ष निकाले हैं :

1. कल्कि के लेखन के कलात्मक तत्त्वों में प्रथम स्थान हास्य को प्राप्त है जो प्रशंसनीय स्तर का भी है।
2. हम हास्य को कल्कि की रचनाओं का प्राण तत्त्व कह सकते हैं।
3. उनकी रचनाओं में हास्य के विविध प्रकार दर्शित होते हैं। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली इन तीनों के अंतर्गत हास्य का समावेश हुआ है।[3]

उदाहरण के लिए 'कमलाविन् कल्याणम' (कमला का विवाह) कहानी को लेंगे। इस कहानी का शीर्षक, आरंभ, अंत, घटनाओं का संगठन, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली आदि सभी बातों में हास्य छलक उठता है। इस कहानी का एक मुख्य पात्र

---

1. *कल्कि शकाब्दम*, पी.एस. मणि, पृ. 47
2. *एपुत्तालर कल्कि* (लेखक के रूप में कल्कि), (सं.) का. पो. रत्नम, पृ. 13
3. *कल्कियिन् चिरुकथै कलै* (कल्कि की कहानी कला), पृ. 165-195

गोपालकृष्ण अय्यर एक मशहूर वकील हैं। वे हँसोड़ व्यक्ति हैं। कल्कि हास्यपूर्ण ढंग से उनका परिचय देते हैं :

"होम रूल गोपालकृष्ण अय्यर का नाम आप सभी ने सुना होगा। उन्होंने डॉ. एनी बेसंट के ज़माने में उनके होम रूल (स्वराज्य) आंदोलन में सक्रिय भाग लिया था। इसलिए उनका नाम होम रूल गोपालकृष्ण अय्यर बना था। मगर उनसे ईर्ष्या करनेवाले कुछ लोग कहा करते थे कि घर में बीवी की हुकूमत ही ज़्यादा चलने से उनको यह नाम मिला।"[1]

हलका हास्य लिए हुए यह परिचय पाकर हम अनायास ही मुस्करा उठते हैं।

इस कहानी के अंत में भी हास्य का प्रयोग अच्छा बन पड़ा है। कल्कि कहते हैं : 'इस कहानी को पूरा करने के बाद मैंने शीर्षक पर दुबारा ध्यान दिया। यह शीर्षक कहानी को शुरू करते समय ही दे चुका था। दुबारा देखने पर यह शीर्षक दो कारणों से उपयुक्त दिखाई पड़ा। कमला की शादी के अर्थ के अलावा एक पात्र कल्याणम (कल्याणरामन का संक्षेप) अब कमला का कल्याणम (पत्नी कमला के अधीन रहनेवाला) हो गया। ठीक ही है, वह अपने बाप का ही तो बेटा है (जो पत्नी द्वारा शासित गोपालकृष्ण अय्यर थे)।"[2]

गागर में सागर जैसे, संपूर्ण कहानी की कथावस्तु इन आख़िरी दो-तीन पंक्तियों में हास्यपूर्ण ढंग से समाविष्ट हो जाती है। कल्कि का यह लेखन-कौशल पाठकों को आनंद प्रदान करता है।

कल्कि के हास्य लेखन का और एक ज़ोरदार उदाहरण है, 'कैलास़म अय्यर का काबरा' (कैलासम अय्यर की भीरुता) नामक कहानी। इसके आरंभ में कल्कि अपनी विशिष्ट हास्यपूर्ण शैली में भीरु कैलासम अय्यर का परिचय देते हैं :

> "आप लोगों ने कितने ही डरपोकों को अब तक देखा होगा। मगर जब तक आप कैलासम अय्यर से परिचित नहीं होते, तब तक आपको अधिकतम भीरुता और डरपोक स्वभाव का पता नहीं चल सकता। डरने के मामले में उनसे बढ़कर और कोई नहीं है। एक बार उनके घर के सामने के रास्ते से होते हुए कुछ देशभक्त भारती के 'अच्चमिल्लै, अच्चमिल्लै' (डर नहीं है, किसी बात का डर नहीं है) गीत को बड़े ज़ोर से गाते हुए जा रहे थे। उस वक़्त कैलासम अय्यर खाट पर पड़े आराम कर रहे थे। बाहर शोर को सुनकर वे इतना भयभीत हो उठे कि वे खाट पर से गिर पड़े और उनके पैर में भारी चोट लग गई।"[3]

---

1. *शारदैयिन् तंत्रम*, पृ. 33-34
2. वही, पृ. 65
3. *वीणै भवानी*, पृ. 83

इसी ढंग से घटनाओं का संगठन, चरित्र-चित्रण और भाषा शैली में हास्य का शालीन प्रयोग करके कल्कि ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं।

उपन्यासों में हास्य

कल्कि ने सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार के उपन्यास लिखे हैं। उपन्यासों के द्वारा ही उनको ज़्यादा प्रसिद्धि मिली। चाहे सामाजिक उपन्यास हो (जैसे *कल्वनिन् कादलि, त्याग भूमि, अलै ओसै*), चाहे ऐतिहासिक उपन्यास हो (जैसे *पार्तिबन् कनवु, शिवकामियिन् शपथम, पोन्नियिन् सेलवन*), कल्कि के उपन्यासों में हास्य का समावेश एक विशिष्ट पहलू बना हुआ है।

कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों की कथावस्तु गंभीर है तथा वह पल्लव वंश और चोल वंश के शासन के इतिहास से संबंधित है। फिर भी उन उपन्यासों में भी हास्य का उल्लेखनीय प्रयोग हुआ है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्र, चाहे वे इतिहास के व्यक्ति हों या काल्पनिक व्यक्ति, हास्य की प्रवृत्ति से ओतप्रोत हैं। कण्णपिरान, गुंडोदरन, परंज्योति, आल्वार्कु अडियान, वंदियतेवन, महेन्द्रवर्मन आदि कथापात्र अक्सर अच्छे स्तर के हास्य की अभिव्यक्ति करते हैं, जिससे पाठकों को आनंद की अनुभूति होती है। इसको पुष्ट करनेवाले दो उदाहरण देखेंगे।

पोन्नियिन् सेल्वन उपन्यास में एक जगह एक वीर (अनन्य) शैव व्यक्ति और एक वीर वैष्णव व्यक्ति के बीच शैव और वैष्णव मतों की तुलना करते हुए वाक्-युद्ध जैसे वाद-विवाद चलने लगता है। अपने संप्रदाय को श्रेष्ठ और दूसरे के संप्रदाय को निम्न घोषित करके दोनों तर्क प्रस्तुत करते हैं।

> "अरे भाई, तुम्हारे आलवारों (वैष्णव संत कवि) की संख्या केवल बारह है। हमारे नायन्मार (शैव संत) तिरसठ हुए हैं। इसलिए हम ही बड़े हैं। इसे याद रखो।"
>
> "ओहो, यह भी कोई बड़प्पन की बात है? पांडव केवल पाँच थे। दुर्योधन आदि सौ थे। क्या इसलिए दुयोधन के पक्ष को अव्वल कहकर तुम उसका समर्थन करोगे?"
>
> "ज़्यादा मत बड़बड़ाओ। कैसी हिम्मत तुम्हारी कि दुर्योधन के गिरोह से हमारे नायन्मारों की तुलना करते हो? तुम्हारे आलवारों की टोली में ही पेय आलवार, भूत आलवार आदि होते हैं।"[1]

---

1. पेय् और भूत उपनाम हैं। पेय् का अर्थ है प्रेतात्मा। शरीर की हीनता दिखाने के लिए दो आल्वारों ने ये नाम रख लिए।

"अरे, क्या तुम यह भूल गए कि तुम्हारे शिवजी के अनुचर कौन होते हैं, भूतगण ही हैं न?"[1]

हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि इस वार्तालाप को पढ़नेवाला चाहे शैव हो या वैष्णव, वह ज़रूर मुस्कराएगा। तमिष़ के विद्वान सेल्वनायकम यह विचार प्रकट करते हैं : "कल्कि के लेखन में उच्च स्तर का हास्य द्रष्टव्य है, पर वह किसी को उल्लू बनानेवाले क़िस्म का हास्य नहीं है। कल्कि जिस पर कटाक्ष करते हैं, वह तिलमिला नहीं उठता, बल्कि हँसने लगता है। इतना भद्र हास्य है वह।"[2]

शिवकामियिन् शपथम उपन्यास में वातापि के सम्राट पुलकेसिन और उनके राज्य में जासूसी करने के लिए आया हुआ पल्लव गुप्तचर गुंडोदरन (विशाल तोन्दवाला) के बीच जो वार्तालाप होता है, उसमें स्वाभावाविक हास्य की अभिव्यक्ति हुई है। यह रोचक वार्तालाप पढ़कर पाठक हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता है।

सम्राट अचानक गुंडोदरन को देख लेते हैं। उनके मन में शक पैदा होता है। वे पूछताछ करने लगते हैं।

"अरे बदमाश, तू कौन है? किस काम से इस तरफ़ आया है? सच-सच बोल।"

"हुज़ूर, मैं अपनी माँ का बेटा हूँ। कोल्लिडम् नदी के उस पार तिरुवेणूकाडु गाँव को जाने के लिए निकला था। वहाँ जो वैद्यजी रहते हैं, उनसे दवा ले आने के लिए जा रहा हूँ।"

"तू दवा किसलिए लाने जाता है? तेरा क्या बिगड़ गया है?"

"दवा मेरे लिए नहीं हुज़ूर। मेरी अम्मा के लिए दवा की ज़रूरत है। जब वह चिउड़ा कूट रही थी, तब अचानक उसने ओखली को निगल लिया। इसलिए दवा लाने जा रहा हूँ।"

"क्या बकवास करता है? क्या बोला? तेरी माँ ने ओखली को निगल डाला?"

"नहीं हुज़ूर, उसने ओखली नहीं निगली, बल्कि मूसल को निगल दिया था।"

"सच-सच बोल, तेरी माँ ने ओखली को निगल डाला था या मूसल को?"

"नहीं हुज़ूर, ओखली ने ही मेरी माँ को निगल लिया।"

"क्या तू मुझसे खिलवाड़ करता है? तेरे को क्या सज़ा दूँगा, जानता है?"

"हुज़ूर, माफ़ कर दीजिए। आपको देखकर मुझे बहुत डर लगने लगा है। इसलिए दिल में कुछ है, मगर जीभ बोलती है और कुछ।"

"ठीक है, अब किसी डर के बिना ख़ूब सोचकर सच-सच बोल।"

---

1. *पोन्नियिन् सेल्वन*, भाग 5, पृ. 345-346
2. *तमिल उरैनडै वरलारु*, पृ. 155-56

"जी, मेरी माँ चिउड़ा कूट रही थी, तब मूसल फिसलकर हाथ पर गिर पड़ी। इसलिए माँ के हाथ में चोट आ गई। चोट के इलाज के लिए तिरुवेण्काडु नमशिवाय वैद्यजी से दवा ले आने को जा रहा हूँ, हुजूर।"

"वात बस इतनी-सी है? कुछ और नहीं है क्या? क़सम खाओ।"

"हाँ हुजूर, मैं क़सम खाकर कहता हूँ। मूसल को ही चोट लग गई।"[1]

जब कोई बड़े ओहदेवाला किसी मामूली इन्सान को डरा-धमकाकर उससे सवाल पर सवाल पूछे वह इसी प्रकार अंड-बंड बक उठेगा। इस तथ्य के आधार पर कल्कि उपर्युक्त वार्तालाप में हास्य लहरियाँ पैदा करते हैं।

निबंधों में हास्य

निबंध लेखन के प्रति कल्कि को स्वाभाविक रूप से लगाव था। उन्होंने अपने जीवन-काल में *नवशक्ति, विमोचनम, आनंद विकटन, कल्कि* आदि पत्रिकाओं में भिन्न-भिन्न पदों पर काम किया था। इसलिए उन्हें समयानुकूल सैकड़ों निबंध और संपादकीय लिखने पड़े।

डॉ. कला ठाकर ने अपने शोधग्रंथ में कल्कि द्वारा लिखित 550 लेखों की सूची दी है।[2] ये लेख शिक्षा, भाषा, संगीत, नृत्य, नाटक, फ़िल्म, पत्रकारिता, समीक्षा, यात्रा, समाज, राजनीति महापुरुष आत्मकथा श्रद्धांजलि आदि विभिन्न विषयों से संबंध रखते हैं।

कल्कि के निबंधों में उच्च स्तर का हास्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। वस्तुतः उनके 'एट्टिक्कु पोट्टि' शीर्षक हास्य लेख ने ही उनको *आनंद विकटन* पत्रिका का संपादक-पद दिलवा दिया और एक विशेषता यह है कि 'कल्कि' उपनाम से प्रकाशित सर्वप्रथम लेख भी यही है। इस लेख में कल्कि की हास्य-शैली पूर्ण रूप से चमक उठी है। हल्का व्यंग्य, प्रवाहमय भाषा, स्वाभाविक हास्य, संसार के दृष्टिकोण से उलटा दृष्टिकोण, सुधारवाद का समर्थन आदि कई दृष्टियों से यह लेख उत्तम कोटि का बन पड़ा है। उसका एक अंश नीचे उद्धृत कर रहे हैं :

> "हमारे पूर्वज जिस दिशा में निवास करते हैं (वैसे तो वह दिशा मुझे मालूम नहीं है), उस ओर में हाथ जोड़कर दंडवत् प्रणाम करता हूँ। अहा! क्या कहूँ! उन लोगों ने हमारी कितनी भारी भलाई कर दी है! साल के 365 दिनों में लगभग 300 दिन छुट्टी जैसे बिताने के लिए इंतज़ाम कर गए हैं। आजकल तो

---

1. *शिवकामियिन् शपथम,* भाग 3, 514-516
2. *कल्कि और मुंशी के ऐतिहासिक उपन्यास : एक तुलना,* पृ. 259-485

एक इतवार के दिन भी छुट्टी मनाना मुश्किल हो गया है। मगर पुरखों ने आराम का कितना बढ़िया बंदोबस्त कर रखा था, देखिए।

"महीनों में भादों और अगहन बुरे माने जाते हैं। अन्य महीनों में किसी एक महीने को लें, तो अमावस्या, उसका अगला दिन (पितामही अमावस्या) और नवमी तिथि लाभकारी दिन नहीं हैं। भरणी (अपभरणी) और कार्तिक नक्षत्रों के दिन भी बुरे हैं।

"किसी एक सप्ताह को लें, तो शुक्रवार कलह का दिन है। शनिवार और मंगलवार अशुभ दिन हैं। आपने सुना होगा कि मंगलवार के दिन कोई नया काम शुरू करने पर भूखा रहना पड़ेगा। मरण योग के दिन और 'करि' (ख़राब) दिन भी काम के लायक़ नहीं हैं।"

"वैसे महीना, तिथि, नक्षत्र, वार, योग सब कुछ ठीक हो, तब भी किसी भी दिन में राहुकाल, त्याज्यम्, प्रदोष का समय आदि हानिकर और वर्ज्य होता है। इतनी मुसीबतों को लाँघकर कोई मनुष्य अपना काम शुरू करे और उस समय कोई दूसरा व्यक्ति खाँस मात्र उठे, तो बस काम से छुट्टी हो जाएगी।"

"अहा! आराम करने के इतने नियम-उपनियम उस बीते युग में पूर्ण रूप से अमल में थे। उस युग के बारे में सोचने पर मुँह से लार टपकती है। मगर क्या करें? अब कलियुग के दिन ही तो धीरे-धीरे पक रहे हैं।"[1]

आनंद विकटन पत्रिका के मालिक एस.एस. वासन ने इस लेख की प्रशंसा करते हुए लिखा है : "एक ज़माना था जब तमिष़ में पढ़ने के लिए रूखी और कठिन शैली में लिखे ही लेख निकला करते थे। लेखकगण सोचते थे कि लेखन में हास्य का समावेश नहीं होना चाहिए। ऐसा कुछ लिखना पाप जैसा समझा जाता था, जिसे पढ़कर पाठक हँस पड़े। पत्रिकाओं का कर्तव्य तमिष़ का विकास करना मात्र माना जाता था न कि हास्य का समावेश।

"इस दृष्टिकोण के बिल्कुल उल्टे उदाहरण के रूप में कल्कि का लेख 'एट्टिक्कु पोट्टि' था। उसकी शैली बच्चों के लिए भी बोधगम्य थी। पढ़ते ही ख़ूब हँसी आ गई। फिर भी लेख में व्यक्त विचार गंभीर और गहरा था।

मैं खुश हुआ कि तमिष़ में इतना बढ़िया लिखनेवाला एक लेखक मिल गया है। मैंने आसपास बैठे लोगों को यह लेख पढ़कर सुनाया। वे हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। अपनी माताजी को भी पढ़कर सुनाया। वे भी ख़ूब रसास्वादन लेकर हँसने लगीं।"[1] वासन जी ने 'एट्टिक्कु पोट्टि' लेख के बारे में जो कुछ कहा है, वह सही है। उन्होंने झूठी तारीफ़ नहीं की है।

---

1. *एट्टिक्कु पोट्टि*, पृ. 26-27

कल्कि का 'समीक्षा' शीर्षक लेख भी यहाँ स्मरण करने योग्य है। तमिष़ पत्रिकाओं में जिस ढंग से पुस्तकों की समीक्षा की जाती है, उसकी खिल्ली उड़ाते हुए कल्कि ने यह रोचक लेख लिखा है। उसका एक अंश इस प्रकार है :

"हमारे देश के किसी भी कोने में किसी भी मुद्रणालय में जो भी काग़ज़ छपता है, उसकी एक प्रति समीक्षा के लिए मेरे पास आ जाती है, लेकिन एक प्रकार का ऐसा काग़ज़ है, जो मेरे पास नहीं पहुँचता। वह है सरकार द्वारा छपे रुपये के काग़ज़।

"इससे यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी सरकार कितनी फिसड्डी है। वर्तमान विज्ञापनबाज़ी के युग में इस सरकार को छोड़कर विज्ञापन की महिमा न जाननेवाली संस्था और कोई नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए, अगर सरकार प्रगतिशील हो, तो निम्नलिखित छपे काग़ज़ मेरे पास भेज सकती है : दस रुपये का नोट 1, पाँच रुपये का नोट 2, सौ रुपये का नोट 6, हज़ार रुपये का नोट 12.

"अगर सरकार ये सब काग़ज़ मेरे पास भेजकर निवेदन करे कि कृपया इस छपी सामग्री की एक समीक्षा प्रस्तुत कीजिए, तो कितना बढ़िया होगा! तब मैं ऐसी अद्भुत समीक्षा लिख डालता, जैसी अभी तक मैंने किसी भी छपे काग़ज़ की न लिखी है।"[2]

इस प्रकार कल्कि के लेखों में जहाँ भी देखें, वहाँ सहज, स्वाभाविक और उच्च स्तर का हास्य नज़र आता है।

जीवन में हास्य

अब अंत में यह देखेंगे कि कल्कि के व्यक्तिगत जीवन में हास्य का क्या स्थान था। उनके पुत्र और *कल्कि* पत्रिका के प्रबंध निदेशक श्री राजेन्द्रन जी कहते हैं : "कल्कि ने सभाओं में भाषण देते मात्र समय नहीं, अपनी रचनाओं में मात्र नहीं, अपने जीवन में भी हास्य-प्रधान दृष्टिकोण अपनाकर उत्साह के साथ जीवन का रसास्वादन किया था। उनके जीवन में एक दिन भी ऐसा नहीं बीता, जब वे ख़ूब हँसे नहीं हों और उन्होंने दूसरों को हँसाया नहीं हो।"[3]

कल्कि के दृष्टिकोण में हास्य लेखक कोई विदूषक नहीं है। वह एक प्रकार का दार्शनिक है। कल्कि अपने इस विचार को हास्य लेखक 'नाडोडी' (घुमक्कड़—वेंकटरामन नामक लेखक का उपनाम) की पुस्तक 'नाटकमे उलकम' (संसार है एक रंगमंच) की

1. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 2
2. *एट्टिक्कु पोट्टि*, पृ. 176
3. दिल्ली तमिष़ संघ की पत्रिका *सुडर* (ज्वाला), कल्कि विशेषांक, 1967, पृ. 27

भूमिका में इस तरह स्पष्ट करते हैं : "हास्य लेखक को एक वेदांती या दार्शनिक के समकक्ष मान सकते हैं। दार्शनिक जीवन के सुख-दुखों को समान दृष्टि से देखता है। इसी प्रकार हास्य लेखक जीवन की सभी घटनाओं में हँसने और मुदित होने की कुछ न कुछ सामग्री के उपस्थित होने का अनुभव करता है।"[1]

अगर हम इस कसौटी पर कल्कि के जीवन का मूल्यांकन करें, तो पता चलेगा कि वे भी कुछ दार्शनिक जैसे ही जीवन को देखा करते थे। वे अपने जीवन में जो सुख-दुख हुए, उनको समान दृष्टि से देखते और स्वीकार करते गए। गहराई से विचार करें, तो जीवन की सभी घटनाओं में हँसने, ख़ुश होने के लिए कोई न कोई बात अवश्य छिपी रहती है। उसे पहचानने की क्षमता कल्कि को स्वभाव से ही प्राप्त थी। तीन उदाहरण देखेंगे।

1. कल्कि के दांपत्य जीवन की शुरुआत में एक विचित्र स्थिति पैदा हुई। विवाह के समय के आसपास के काल में कल्कि एक नामी लेखक के रूप में उभर रहे थे। मगर पत्नी उनको ऐसी प्राप्त हुई जो लिखना-पढ़ना बिल्कुल नहीं जानती थी! रुक्मिणी जी ने कभी स्कूल के अंदर पैर नहीं रखा था। उनको घड़ी देखकर समय बताना भी नहीं आता था! उनकी हालत नवजात बिल्ली की-सी थी, जिसकी आँखें अभी खुली नहीं थीं। विवाह के समय कल्कि को इस बात का पता नहीं था। विवाह के एक साल बाद जब कल्कि ने मद्रास में पत्नी के साथ अलग गृहस्थी शुरू की, तभी उनको मालूम हुआ कि उनकी अर्द्धांगिनी अनपढ़ थीं।

रुक्मिणी जी डरी हुई थीं कि कल्कि नाराज़ हो जाएँगे, लेकिन कल्कि ने गुस्सा प्रकट नहीं किया। वे हतोत्साहित भी नहीं हुए। उन्होंने बड़े स्नेह से सांत्वना दी : "ठीक है, इस वक़्त तुम पढ़ना-लिखना नहीं जानती हो। कोई बात नहीं। अब से सीखना शुरू करो। सब आ जाएगा।" रुक्मिणी विस्मित हो गईं। इस घटना के बाद उन्होंने धीरे-धीरे लिखना-पढ़ना सीख लिया। इसका उल्लेख उन्होंने *सावि* नामक पत्रिका के 20 अगस्त 1998 के अंक में प्रकाशित 'एन कणवर' (मेरे पतिदेव) शीर्षक साक्षात्कार में किया है।

इससे प्रकट होता है कि कल्कि स्वभाव से, मन की गहराई में, तटस्थ दृष्टिकोण रखनेवाले दार्शनिक जैसे थे। इसलिए जब पत्नी के अनपढ़ होने की अप्रत्याशित बात मालूम हुई, तब कल्कि ने सहज भाव से स्थिति का सामना किया। कालांतर में उन्होंने उस समस्या पर विजय भी प्राप्त की।

---

1. *एपुत्तुलकिल् अमरतारा,* (सं) : सुभ्र बालन, पृ. 5

2. एक बार कल्कि अपनी पुत्री आनंदी के साथ किसी अन्य शहर को जाने के लिए रेल गाड़ी पर चढ़ रहे थे। उसी क्षण गाड़ी झट से निकल पड़ी। कल्कि की चप्पलों में एक पैर की चप्पल फिसलकर प्लेटफ़ॉर्म पर गिर गई। डिब्बे के अंदर पहुँचते ही कल्कि ने अपने दूसरे पैर में जो चप्पल रह गई उसको निकालकर खिड़की के बाहर फेंक दिया।

आनंदी ने विस्मित होकर पूछा, "पिता जी, आपने यह दूसरी चप्पल क्यों बाहर फेंक दी?" कल्कि ने स्पष्ट किया : "बेटी, सिर्फ़ एक चप्पल को अपने पास रखकर मैं क्या करूँ? इसको बाहर फेंक देने से जोड़ी की पूर्ति होकर कोई दोनों पैरों में चप्पल पहन पाएगा।"[1]

प्राचीन तमिष़ साहित्य के महाकवि संत तिरुवल्लुवर की सलाह है कि जब मुसीबतें आती हैं, तब मुँह खोलकर हँसो (*तिरुक्कुरल*, 621)। उपर्युक्त घटना इसका सबूत है कि तिरुवल्लुवर की इस सलाह को कल्कि अपने जीवन में पालन करके दिखाते थे।

3. प्रसिद्ध निबंध लेखक और संपादक 'भगीरथन' ने *कल्कि निनैवुकल* (कल्कि : कुछ संस्मरण) नामक अपनी पुस्तक में एक विलक्षण घटना का वर्णन किया है, जिसे पढ़कर हमारा मन द्रवीभूत हो उठता है। भगीरथन लिखते हैं :

"कल्कि सख़्त बीमार थे। बीमारी ने उनके शरीर को बहुत कमज़ोर बना दिया था। डॉक्टर लोग पूरी जाँच करने के बाद भी उनकी बीमारी का ठीक-ठीक पता न लग पाने से हैरान थे। इसलिए सबसे बड़े जनरल अस्पताल में उनकी भर्ती की गई, तब वहाँ के बड़े-बड़े डॉक्टरों ने ख़ूब ध्यान देकर उनकी हालत की जाँच की।

"जाँच की पूर्ति होने पर कल्कि डॉक्टरों के कमरे से निकलकर वॉर्ड में अपने कमरे की ओर लौट रहे थे। वे ऐसे संतुलित क़दम रखकर आने लगे गोया उनको कोई बीमारी ही नहीं है।"

"मुझे खड़े देखकर वे मुस्करा उठे। उनकी हँसी ऐसी लगी जैसे वे स्वस्थ हों और मेरी तबीयत का ही हाल पूछने को उत्सुक हों। शाम को विज़िटर्स टाइम में उनसे मिलकर उनकी तबीयत के बारे में पूछने के लिए मैं दुबारा अस्पताल गया। इधर-उधर की बातें करने के बाद मैंने पूछा, 'डॉक्टर लोग क्या कहते हैं?"

उन्होंने जवाब दिया, "वे लोग कहते हैं कि शरीर में कुछ नहीं है।"

"बड़ी ख़ुशी की बात है, जी।"

"इसमें ख़ुश होने के लिए कौन-सी बात है?"

"अभी आप बता रहे थे कि डॉक्टरों के अनुसार शरीर में कुछ नहीं है।"

---

1. *कल्कि शकाब्दम*, पी.एस. मणि, पृ. 50-51

"कल्कि हँसने लगे। फिर शांतिपूर्ण आवाज़ में कहा : "शरीर में कुछ न होना ही असल में समस्या है। अगर मेरे शरीर में कोई ख़ास ख़राबी हो, तो उसे चंगा किया जा सकता है, लेकिन जब डॉक्टर लोग कहते हैं कि मेरे शरीर में कुछ नहीं है, तो इसका मतलब है कि शरीर बहुत बिगड़ चुका है। करने के लिए कुछ बाक़ी नहीं है। अब वह स्वस्थ नहीं हो सकता।" (पृ. 589)

इस प्रकार कल्कि ने एक दार्शनिक का दृष्टिकोण अपनाकर हास्य की सहायता से अपने जीवन में हर अनुभव का सामना किया। समस्याएँ पैदा होने पर वे हँसते हुए उनका स्वागत करते थे।

सब में हास्य—सब कहीं हास्य

कल्कि की रचनाओं 'सब में हास्य—सब कहीं हास्य' की स्थिति पाई जाती है। वह हास्य स्वाभाविक और उच्च कोटि का है। तमिष़ में कहावत है कि बहादुर आदमी के हाथ में घास का तिनका भी एक हथियार बना जाएगा। कल्कि का हास्य हलका-फुलका है, लेकिन उसका असर गहरा पड़ता है। कल्कि ने हास्य के सृज़न के लिए कई प्रकार के तरीक़े अपनाए। लघु कथा, चुटकुले, क़िस्से, लतीफ़े, संसार की अजीब घटनाएँ आदि कई रूपों के द्वारा हास्य को अभिव्यक्ति दी है। इसीलिए उनका हास्य प्रशंसनीय बन गया है। उदाहरण के तौर पर, *आनंद विकटन* पत्रिका में 'कल्याणम' (विवाह) शीर्षक से प्रकाशित एक हास्यपूर्ण अंश का हवाला किया जा सकता है, जो इस प्रकार है :

> "जब मैं छोटा लड़का था, तब एक बार हमारे गाँव में एक विवाह संपन्न हो रहा था। हमेशा जैसे इस विवाह के अवसर पर भी ज़ोर-ज़ोर से 'मेलम', (ढोलक से बड़ा और कान के पर्दे को फाड़नेवाली ध्वनि निकालनेवाला बाजा), बज रहा था। उस समय हम लड़के स्कूल की कक्षा में बैठे हुए थे। हमारे मास्टर साहब ने हम लोगों से पूछा : 'उधर वह बाजा ज़ोर से बजकर कुछ कहता हुआ-सा लगता है। क्या वह किसी की समझ में आता है।' फिर उन्होंने खुद व्याख्या की : 'छात्रो, ध्यान देकर वह चिल्लाहट सुनो। क्या ऐसा नहीं लगता कि वह बाजा चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है—बेचारा पकड़ा गया, बेचारा पकड़ा गया।'
>
> "मतलब, वह बाजा मानों पुकार-पुकारकर कह रहा है, 'हाय! वह बेचारा आदमी शादी के जाल में बुरा फँस गया।' बात बिल्कुल सच है। शादी के क्षण से लेकर मर्द अपनी आज़ादी खो बैठता है। उसके सिर पर बड़ा बोझ लाद दिया जाता है।"[1]

---

1. *आनंद विकटन*, 16 नवंबर 1936 का अंक

आजकल भी तमिलनाडु में वाद-विवाद सभाओं में अक्सर यह चुटकुला दुहराया जाता है। इसे सुनकर श्रोताओं की मंडली में हास्य की लहर फैलने लगती है। जब हमें पता चलता है कि इस चुटकुले के जनक कल्कि हैं, तब हमें बड़ा विस्मय होता है। इसी प्रकार के कई चुटकुले भी हैं, जिनका प्रथम प्रयोग कल्कि ने ही किया था। कल्कि के वे चुटकुले आजकल भी वक्ताओं के द्वारा अपने भाषणों में प्रयुक्त किए जाते हैं।

राजाजी द्वारा मूल्यांकन

कल्कि के निधन पर राजाजी ने एक संवेदनात्मक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था 'हमने खो दिया एक माणिक्य।' उसका उपसंहार इस प्रकार है : "तमिलनाडु में हास्य के पौधे को अपनी रचनाओं के पानी से सींचनेवाले एक महान संपादक हमारी दृष्टि से ओझल हो गए। पहले यह भ्रांत धारणा प्रचलित थी कि किसी का मज़ाक़ उड़ाकर और उसका दिल दुखाकर सताना ही हास्य है। कल्कि इस भ्रांति को निर्मूल करके स्वस्थ हास्य से उत्पन्न हार्दिक हँसी को तमिलनाडु में फैलाते हुए आ रहे थे। हास्य लेखन के क्षेत्र में अन्य लेखकों का भी मार्गदर्शन करनेवाले उस महान लेखक का अंतर्धान हो गया है। हँसानेवाली हर चीज़ हास्य की कोटि में नहीं आ जाती। कल्कि के हास्य में दिल और दिमाग़ का, ज्ञान और सहानुभूति का मिश्रण पाया जाता है। उनके उत्कृष्ट हास्य को तमिष़ लोग उनकी विशिष्ट संपत्ति के रूप में देखने के आदी हो गए थे।"[1]

कल्कि के हास्य के संबंध में राजाजी का यह मूल्यांकन बिलकुल सही और समीचीन है।

1. *एवुत्तुलकिल् अमरतारा*, पृ. 164

7

घटनाएँ कुछ...यादें कुछ

"कल्कि का जीवन अभावों से रहित था। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि कैसे जीवन को अभावरहित ढंग से चलाया जा सकता है। पहले यह धारणा प्रचलित थी कि तमिष़ लेखक का मतलब ग़रीबी से पीड़ित चलता-फिरता अस्थि-पंजर है। इस ग़लतफ़हमी को साफ़-पोंछकर मिटा देने के लिए कल्कि ने कठिन परिश्रम किया। जब कभी किसी ग़रीब लेखक की आवाज़ सुनाई पड़ती, तुरंत 'कल्कि बैंक' खुल जाता था।"

—नवीनन[1]

1. बाल-गीत में सुधार

कल्कि की पुत्री आनंदी संगीत सीख रही थी। उसके गुरु ने एक विनती गीत सिखाया था, जिसकी दो पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार निकला :

"नीच कार्य किए मैंने बहुतेरे-मगर
कृष्ण, तेरे चरणों में जुड़ जाना
भूल गई थी मैं।"

आनंदी ने अपने पिताजी को यह गीत गाकर सुनाया, तो वे तड़प उठे और कहने लगे, "हाय रे ईश्वर! मासूम बच्चों के मुँह से नीचे कर्मों के लिए पछताने की बात कहलवाना कितना अनुचित है!" उन्होंने उन पंक्तियों को इस प्रकार परिवर्तित करके खुद गाकर सुनाया :

"कोई बुरा काम करना मैं न जानती
तेरे चरणों को भूलना भी न जानती।"

---

1. *कल्कियिन् कनवु* (कल्कि का स्वप्न), पृ. 21

फिर कहा, "इस प्रकार ही गुरु के सामने गाकर सुनाना और कह देना कि मैंने ही पंक्तियों को बदल डाला।"[1] इस घटना से स्पष्ट होता है कि कल्कि बहुत चौकस रहते थे कि बच्चों के मन में ग़लत या निराशाजनक विचारों का प्रवेश नहीं होना चाहिए।

2. सिफ़ारिश से कोसों दूर

यह उस समय की घटना है, जब राजाजी दूसरी बार (1952-54) तमिलनाडु के मुख्यमंत्री बने थे। कल्कि के पुत्र राजेन्द्रन 1953 में इंटरमीडियट (कॉलेज में प्रथम दो वर्ष की पढ़ाई) में उत्तीर्ण हो चुके थे। आगे वे मेडिकल कॉलेज में भर्ती होना चाहते थे।

उन्होंने अपने पिताजी से कहा, "आप राजाजी को अण्णा (बड़े भाई साहब) मानते हैं। आप उनसे एक लफ़्ज़ कह दें, तो मुझे प्रवेश मिल जाएगा।"

कल्कि हँस पड़े और उनके मुँह से इतना ही निकला, "छिः! छिः!" उस हँसी में राजेन्द्रन की अबोधता का परिहास था, तो धिक्कार की उस 'छिः! छिः!' ध्वनि से प्रकट होता था कि कल्कि इस प्रकार का काम करने के लिए सोचने तक को तैयार नहीं थे। राजाजी के निकटस्थ होने पर भी कल्कि ने उस निकटता से कभी फ़ायदा नहीं उठाया। सिफ़ारिश के वश में न आनेवाले राजाजी के स्वभाव को और उनके प्रति कल्कि के श्रद्धापूर्ण रुख़ को समझने के लिए यह घटना एक अच्छी मिसाल है।[2]

3. "मंत्री नहीं बनना चाहता।"

प्रसिद्ध क्रांतिकारी देशभक्त चिन्न अण्णमलै की पुस्तक *सोन्नाल् नंब माट्टीरगळ्* (कहूँ तो भी यक़ीन नहीं करेंगे) (पृ. 168-169) में निम्नलिखित घटना का उल्लेख है :

ओमंदूर (गाँव) रामस्वामी रेड्डियार (1898-1970) 1947 से 1949 तक तमिलनाडु के मुख्यमंत्री थे। वे कल्कि का बड़ा आदर करते थे। कल्कि भी उनके प्रति श्रद्धा-भाव रखते थे। एक बार रेड्डियार, कल्कि, चिन्न अण्णामलै, टी.के. चिदंबरनाथ मुदलियार और राजाजी एक जगह बैठकर गपशप कर रहे थे।

रेड्डियार ने कल्कि से कहा, "मेरी बड़ी इच्छा है कि आप मेरे मंत्रि-मंडल में शामिल होकर जनता की सेवा करें।" अचानक यह प्रस्ताव सुनकर सब थोड़ी देर मौन रहे।

चुप्पी तोड़कर चिन्न अण्णामलै ने पूछा, "क्या कोई व्यक्ति किसी पत्रिका में संपादक का काम करते हुए मंत्री भी बन सकता है?"

राजाजी बोले, "नहीं, यह संभव नहीं है।"

---

1. *दिनमणि* पत्रिका, दीपावली विशेषांक 1998, पृ. 139
2. *नाट्टुक्कु ओरु पुदलवर* (देश का एक सुपुत्र), कल्कि, पृ. अ.अप

तब चिन्न अण्णामलै ने पूछा, "अगर कल्कि जी अपनी पत्रिका का संपादक-पद छोड़कर मंत्री का पद स्वीकार करें, तो इसका मतलब यही होगा न कि संपादक के पद से मंत्री का पद बेहतर है?"

तुरंत कल्कि ने दृढ़ता के साथ अपनी स्थिति स्पष्ट की : "मंत्री का पद सिर्फ़ पाँच साल के लिए है। वह भी राजनीतिक परिस्थिति पर निर्भर है, लेकिन मैं अपना संपादक का पद आख़िरी साँस तक निभा सकता हूँ। मैं संपादक के पद को मंत्री के पद से श्रेष्ठ मानता हूँ।"

चिदंबरनाथ मुदलियार ने प्रशंसा की, "शाबाश, शाबाश, ख़ूब कहा।"

इस प्रकार घर आई लक्ष्मी को—मंत्री पद को—निर्लिप्त होकर कल्कि ने ठुकरा दिया।

4. निष्पक्ष समीक्षक

'कर्नाटकम' (परंपरावादी) उपनाम से कल्कि ने अक्सर संगीत आदि मनोरंजन कार्यक्रमों के बारे में समीक्षाएँ लिखीं। वे तीखी और तीक्ष्ण तो होती थीं, मगर बिल्कुल निष्पक्ष थीं।

एक बार कल्कि ने एक फ़िल्म में किसी महिला के अभिनय को मामूली कहकर समीक्षा लिखी थी। वह अभिनेत्री कांग्रेस की सदस्या थी। कांग्रेस के समर्थक कुछ पाठकों ने हल्ला मचाया कि जो महिला हमेशा खादी पहनती है और कांग्रेस की चुनाव-सभाओं में प्रचार-गीत गाती है, उसके बारे में ऐसी समीक्षा लिखना क्या उचित था।

कल्कि ने अपनी समीक्षा का मानदंड स्पष्ट किया : "अगर वह खादी-प्रेमी महिला कांग्रेस के उम्मीदवार के रूप में कहीं से चुनाव लड़े, तो मैं जाकर प्रचार करूँगा कि सभी लोग उन्हीं को अपने वोट दें, लेकिन किसी के कांग्रेस होने मात्र से उसके अपस्वरों को सुस्वर कहने या घटिया अभिनय को बढ़िया मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।"

"ऐसा मैं करने लगूँ, तो अगर कांग्रेस के नेता डॉ. राजन संगीत के कार्यक्रम में गाएँ, तो उनकी सराहना करनी पड़ेगी। अगर कांग्रेस के एक अन्य नेता मुत्तुरंग मुदलियार कथावाचन करें, तो शाबाश कहना पड़ेगा। कांग्रेस की प्रसिद्ध समाज-सेविका श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति भरतनाट्यम प्रस्तुत करें, तो उसकी वाह-वाही करनी पड़ेगी। कभी ऐसी नौबत आ पड़े, तो तमिलनाडु में ललित कलाओं का मटियामेट हो जाएगा।"

किसी भी घटना या व्यक्ति का मूल्यांकन करते समय अपने मन को जो ठीक लगता था, उसे निडरता के साथ अभिव्यक्त करने का साहस कल्कि में ख़ूब भरा रहता था। तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्यमंत्री अण्णादुरै (1909-1969) का लोकप्रिय नाटक

'ओर् इरवु' (एक रात) को देखने के बाद कल्कि ने अण्णातुरै को बर्नाड शॉ, इब्सन, गालल्सवर्दी आदि विदेशी नाटककारों के समकक्ष मानकर प्रशंसा की। कांग्रेस के कुछ लोगों ने पूछा, "आप क्यों उनकी इतनी प्रशंसा करके सिर पर चढ़ा लेते हैं?" (द्र. मु.क. के संस्थापक होने से अण्णातुरै को कांग्रेस के लोग प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखा करते थे।)

कल्कि ने हँसते हुए उत्तर दिया : "वे बड़े सुंदर ढंग से लिखते हैं। इसलिए उनको अपने सिर पर चढ़ा लेता हूँ। भद्दे ढंग से लिखनेवाले किसी लेखक को, तो मैंने सिर पर नहीं चढ़ा लिया। गंगाजी हैं अत्यंत सुंदर। इसलिए शिवाजी ने उनको अपने सिर पर धारण कर लिया। अगर वे कुरूप होतीं, तो शिवाजी उनको अपने पैरों के नीचे ही तो दबाकर रख लेते।"[1]

5. उपनाम 'कल्कि' का रहस्य

रा. (रामस्वामी) कृष्णमूर्ति ने 'कल्कि' उपनाम क्यों रख लिया? यह परम रहस्य या चिदंबर रहस्य[2] माना जाता है। इस उपनाम के बारे में तरह-तरह की अटकलें प्रचलित थीं। उसकी तरह-तरह की व्याख्याएँ की गईं। 'कल्कि' उपनाम पर अनुसंधान जैसा काम हुआ। यह सब देखकर कल्कि ने अपनी ओर से स्पष्टीकरण के रूप में एक लेख लिखा। 'मेरा नाम' शीर्षक इस लेख में वे बड़ी चतुराई के साथ इस प्रकार कहते हैं :

> "कुछ व्यक्तियों के लिए अपने असली नाम का प्रयोग करना ही वास्तव में लाभदायक है। पहचान के लिए यही नाम पर्याप्त है। तिरु.वि. कल्याणसुंदर मुदलियार और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (राजाजी) ऐसे ही महानुभाव हैं। वे जो भी लिखें, उसे पढ़ने के लिए पाठकों के अलग-अलग समूह पहले ही विद्यमान रहते हैं। फिर एक समूह के पाठक दूसरे वर्ग के पाठकों के प्रिय लेखक के लेख आदि भी अक्सर पढ़ लेते हैं।"

मान लें कि तिरु.वि.क. के पाठक राजाजी के और राजाजी के पाठक तिरु.वि. क. के लेखादि बिना पढ़े छोड़ दें, तब भी एक-एक के कम से कम पाँच हज़ार पाठक अवश्य होते हैं।

लेकिन मेरे जैसे मामूली व्यक्ति के लिए जिस उपनाम से बड़ा सहारा मिलता है, उसका भेद क्यों खोलूँ, भंडा क्यों फोड़ूँ? इसी नाम से मुझे सुविधा है। अगर असली नाम से लिखूँ, तो एक मामूली व्यक्ति के रूप में नज़र आऊँगा। उपनाम से ऐसा कोई

---

1. *एषुत्तुलकिल अमरतारा,* कवि कण्णदासन का लेख, पृ. 135
2. चिदंबरम शहर के प्रसिद्ध नटराज मंदिर में शून्य आकाश का वर्णन शिवजी के प्रतीक और रहस्यमयी पहेली के रूप में किया जाता है।

ख़तरा नहीं है। 'कल्कि' उपनाम से लिखनेवाला कोई बड़े-से-बड़ा आदमी हो सकता है, महापंडित हो सकता है, पंडित शिरोमणि हो सकता है, हाईकोर्ट का जज हो सकता है, मंत्री या कांग्रेस का नेता हो सकता है, इसी तरह के ऊँचे तबक़े का आदमी हो सकता है। उपनाम का रहस्य बताकर काल्पनिक ऊँची हैसियत से मैं अपने को क्यों वंचित करूँ?"[1]

कल्कि ने जब यह वक्तव्य दिया, उस समय अपने नाम से कोई पत्रिका शुरू करने का इरादा उनको नहीं था। *आनंद विकटन* में 'कल्कि' उपनाम को हर सप्ताह देखकर उसका मर्म जानने की उत्सुकता पाठकों में पैदा हो गई थी। इसलिए कल्कि को अपने उपनाम के संबंध में कुछ न कुछ कहना पड़ा।

6. शीर्षासन से उत्पन्न विचार

कल्कि दमे के रोग से सख़्त रूप से पीड़ित थे। वह रोग उनके साथ इतने अभिन्न रूप से जुड़ा था कि 'कल्कि और दमा जैसे' कहकर एक नई उपमा की सृष्टि की जा सकती थी। फिर भी कल्कि ने अपनी जेल-डायरी ढंग की पुस्तक में हास्य की शैली अपनाकर लिखा है : "पिछले दिसंबर (1941) के अंत में मैं बड़ा क़िस्मतवाला बन गया। राजाजी, राजेन्द्र प्रसाद, लॉर्ड बीवरब्रूक जैसे बड़े-बड़े लोगों को जो दमे का रोग हुआ, उसने ढूँढते हुए आकर मेरे जैसे मामूली व्यक्ति को भी अपने वश में कर लिया।"[2]

कल्कि अपने दीर्घकालीन दमे के रोग से मुक्ति पाने के लिए वि.एन. कुमारस्वामी ज़ी के पास गए। कुमारस्वामी जी योगासन सिखाने में निपुण थे। योगासन का अभ्यास करके कल्कि दमे को दूर कर लेना चाहते थे, परंतु उनका रोग दूर नहीं हुआ क्योंकि वह तब तक ज़ोर पकड़ चुका था और असाध्य अवस्था को पहुँच चुका था। फिर भी चिकित्सा के दौरान उन्होंने जो शीर्षासन सीखा था, उससे उनकी कल्पनाशक्ति की वृद्धि हो गई।

एक बार कल्कि यह जानना चाहते थे कि वे कितनी देर सिर पर खड़े हो सकते थे। उन्होंने अपने पुत्र राजेन्द्रन के हाथ में घड़ी देकर हिसाब लगाने को बताया। साधारणतः वे दस मिनट तक सिर के बल खड़े हो सकते थे, लेकिन उस अमुक दिन दो मिनट पूरे होते ही वे सीधे खड़े हो गए। पुत्र ने चिन्ता के साथ पूछा कि उन्होंने क्यों इतनी जल्दी आसन पूरा कर दिया।

कल्कि ने कारण बताया : "बात यह नहीं कि मैं ज़्यादा समय सिर पर खड़ा नहीं हो सकता। बीच में एक बात हो गई। अभी हमारी पत्रिका में धारावाहिक रूप

---

1. *एट्टटिक्कु पोट्टटि*, पृ. 94
2. *मून्नरु माद कडुं कावल* (तीन महीने का सख़्त कारावास), पृ. 7

में *पोन्नियिन् सेलवन* उपन्यास निकल रहा है न? उसके संबंध में एक नया विचार मन में उठा। ऐसा लगा कि उस उपन्यास में आनेवाले चेन्दन् अमुदन् नामक पात्र को राजा बना देना ज़्यादा उपयुक्त रहेगा। उसे तुरंत कार्यान्वित कर देने के लिए आसन को बीच में छोड़कर उठ खड़ा हो गया।" इस प्रकार कहकर कल्कि मेज़ की तरफ़ बढ़े। कुरसी पर बैठकर उस उपन्यास में एक नया मोड़ देकर उस सप्ताह की क़िस्त लिखने लगे। इस प्रकार उपन्यास की कथावस्तु के प्रवाह की दिशा बदल गई। साथ-साथ चेन्दन् अमुदन् नामक पात्र की क़िस्मत भी बन गई।[1]

7. योग्यता पहचानने की क्षमता

जब कभी किसी व्यक्ति में कल्कि को कोई विशेष योग्यता दिखाई पड़ती, तब वे उस व्यक्ति की प्रशंसा करने लगते थे और उसको प्रोत्साहित करते थे। वह योग्यता पूर्ण रूप से प्रकट होने के लिए यथाशक्ति मदद भी करते थे। उनकी ऐसी उदार प्रवृत्ति के कई उदाहरण मिलते हैं। एक इस प्रकार है :

कल्कि पत्रिका के कार्यालय में वि. गोविन्दन नामक कर्मचारी 'कंपोज़िंग' का काम करते थे। उन्होंने एक बार एक कहानी लिखी, जिसे फ़ोरमैन के हाथ में दे दिया। फ़ोरमैन उसे कल्कि की मेज़ पर रखकर चले आए। कल्कि उस कहानी को पढ़कर अचरज में पड़ गए। उन्होंने फ़ोरमैन को बुलाकर पूछा, "यह कहानी तो बड़ी अच्छी है। किसकी कहानी है यह?" फ़ोरमैन ने वि. गोविन्दन को बुलाकर उनके सामने उपस्थित कर दिया। कल्कि ने उनके प्रयास की सराहना की। उनका नाम संक्षिप्त करके 'विन्दन' (विचित्र व्यक्ति) उपनाम से लिखने को कहा। इतना ही नहीं, विन्दन को पदोन्नति देकर सहायक संपादक के रूप में नियुक्त कर दिया।[2]

विन्दन धीरे-धीरे प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में विकसित हुए।[3] उपर्युक्त घटना की सच्चाई को विन्दन ने स्वीकार किया है। उसका स्मरण करके उन्होंने एक बार कहा कि कल्कि ने ही उनको उबारकर शालीन मनुष्य बना दिया।[4]

आनंद विकटन पत्रिका में कल्कि के अलावा आर. महादेवन (1913-1957) नामक उप संपादक लेखों और कहानियों में पठनीय ढंग के हलके हास्य का प्रयोग करते थे। कल्कि ने उनका उपनाम 'देवन' रखा और उनको प्रोत्साहित किया। 'देवन' उपनाम भी 'कल्कि' उपनाम जैसे ही अत्यधिक मशहूर हो गया।

---

1. *पोन्नियिन् पुदलवर*, पृ. 811
2. *कल्कि शताब्दी विशेषांक* (13.9.1998), पी.एस. मणि का लेख, पृ. 59
3. साहित्य अकादेमी की ओर से सु. परमशिवम द्वारा तमिल में विन्दन पर लिखित विनिबंध प्रकाशित हुआ है।
4. *कल्कियिन् कनवु*, पृ. 33

8. 'मुझे नाटक लिखना नहीं आता।'

टी.के. षण्मुखम तमिष़ रंगमंच के प्रसिद्ध अभिनेता थे। पुरुष होने पर भी वे प्राचीन तमिष़ कवियत्री अव्वैयार की भूमिका सफलतापूर्वक खेलकर 'अव्वै षण्मुखम' नाम से प्रसिद्ध हो गए। वे एक बार *कल्कि* पत्रिका के कार्यालय में आए। उन्होंने कल्कि से अनुरोध किया कि वे अपनी कहानी 'सुभद्रा का भाई' को नाटक के रूप में परिवर्तित कर दें, ताकि रंगमंच पर खेला जा सके। कल्कि ने हँसते हुए उत्तर दिया :

> "षण्मुखम जी, क्या आप इस कृष्णमूर्ति को हरफ़न मौला समझ रहे हैं? मुझमें इतनी प्रतिभा नहीं है। मुझे नाटक लिखना नहीं आता। आप अपनी पसंद के किसी नाटककार के द्वारा मेरी कहानी को नाटक के रूप लिखवा दीजिए और उसकी प्रति मेरे पास भेजिए। मैं पढ़कर ठीक-ठीक करके वापस भेजूँगा।"

षण्मुखम अपनी पुस्तक *एनदु नाटक वाष़्कै* (रंगमंच पर मेरा जीवन) में इस घटना का स्मरण करते हुए लिखते हैं :

> "ऐसा कौन लेखक है, जो खुद अपनी सामर्थ्य को सीमित मानने को तैयार होगा? कल्कि एक बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। फिर भी अपनी सीमा को क़बूल करने की हिम्मत उनमें थी। इस तरह अपनी क्षमता को घटाकर बोलने के लिए विशेष तरह का व्यक्तित्व होना चाहिए न?"
>
> (पृ. 488)

इस प्रकार नाटक के क्षेत्र में अपनी असमर्थता को कल्कि ने खुलै तौर पर और साहस के साथ स्वीकार कर लिया। इसके पीछे एक कारण है। कल्कि ने राजाजी की *विमोचनम* पत्रिका में काम करते समय उस पत्रिका के लिए 'बैंकर विनायक राव' नामक अपना प्रथम नाटक लिखा। *आनंद विकटन* और *कल्कि* पत्रिकाओं में उनके दो-चार नाटक प्रकाशित हुए। फिर भी इस क्षेत्र में वे विशेष सफल नहीं हो सके। नाटक लेखन पर वे अपनी विशेष छाप नहीं लगा सके।

9. मेहनत से क्या नहीं मिलता?

कल्कि के कई उपनामों में 'तेनी' (मधुमक्खी) भी एक था। इस उपनाम के अनुरूप वे परिश्रम पर ही पूरा-पूरा विश्वास रखते थे। उनके जीवन के शब्दकोश में 'आलस्य' शब्द के लिए जगह ही नहीं थी। उनके जीवन का महामंत्र यह था कि हमें अपने कर्तव्य को पूर्ण रूप से कर देना चाहिए। मृत्यु निकट आ जाए, तब भी कर्तव्य को पूरा करके मर जाना चाहिए। उन्होंने अपने जीवन की आख़िरी साँस तक विश्वास के साथ जिस आदर्श का पालन किया, वह था—मेहनत से क्या नहीं मिलता।

कल्कि के निधन होने के कुछ दिन पूर्व जो घटना हुई उसकी चर्चा यहाँ करना उपयुक्त होगा। कल्कि की तबीयत बदतर हो गई थी। उनसे मिलने के लिए जो लोग आए, उनमें एक मित्र ने सुझाव दिया कि किसी ज्योतिषी के द्वारा कल्कि अपनी जन्मकुंडली की जाँच करवा लें। सख़्त बीमारी की हालत में भी कल्कि ने जो उत्तर दिया वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है :

> "भाई, यह जन्मकुंडली देखने-दिखाने का पागलपन मुझे क़तई पसंद नहीं है। मालूम है क्यों? जब से हमारे पैरों की उँगलियों में से नाख़ून निकले, तब से हम कड़ी मेहनत करते रहते हैं; जगह-जगह मार खाते हैं; लातें सहते हैं; ठुनके खाते हैं। इस प्रकार हम जीवन में आगे बढ़ते हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है, मेहनत की वजह से ही मैं जीवन में उन्नति की एक-एक सीढ़ी चढ़कर ऊँचा उठ सका। मगर किसी ज्योतिषी को मेरी जन्मकुंडली दिखाकर पूछो, तो वह क्या कहेगा, मालूम है? वह स्वीकार नहीं करेगा कि मेरी योग्यता और मेरी मेहनत के कारण ही मेरी तरक़्क़ी हुई है। वह दावा करेगा कि मेरी जन्मकुंडली में अमुक-अमुक जगहों में मंगल, शुक्र, सूर्य आदि का निवास होने के कारण ही मैं उन्नति कर सका। मैं इसे कैसे बर्दाश्त कर सकता हूँ? उसके निष्कर्ष को सही मानना तो कदापि संभव नहीं है।"[1]

कल्कि का यह व्यक्तिगत विचार उनके *पोन्नियिन् सेलवन* उपन्यास में वंदियतेवन नामक एक प्रधान पात्र और कुंभकोणम शहर के एक ज्योतिषी के बीच वार्तालाप के दौरान भी व्यंग्य के रूप में इस प्रकार प्रकट होता है :

"हाँ, हाँ, ज्योतिषी जी, आपकी भविष्यवाणी बिल्कुल सच निकली।"

"बहुत अच्छा, शाबाश! बताओ भाई, मेरी भविष्यवाणी किस रूप में सच साबित हुई?'

"आपने बताया था न कि तुम जिस काम के लिए जा रहे हो वह होनेवाला है, तो ज़रूर होगा, नहीं होनेवाला है, तो कभी नहीं होगा। ठीक उसी प्रकार हुआ।"[2]

महाकवि भारती ने 'अ' से लेकर एक-एक अक्षर से शुरू होनेवाले 110 नसीहत के वाक्य दिए हैं। उनमें एक है 'ज्योतिष का तिरस्कार कर।' इस सलाह को मानकर कल्कि ने अपनी रचनाओं में ज्योतिष का खंडन हास्य और व्यंग्य के साथ किया है।

---

1. *एषुतुलकिल् अमरतारा*, पृ. 28
2. *पोन्नियिन् सेल्वन*, भाग 3, पृ. 243-244

10. पाठकों को वंचित न करें

पत्रिका के संपादक की हैसियत से कल्कि अपने कर्तव्यों का निर्वाह बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ करते थे। वे हमेशा लेखन कार्य में दत्तचित्त रहते थे। अपनी मृत्यु के सप्ताह भी वे अपनी पत्रिका के लिए कुछ न कुछ लिखते रहते थे। इन सबका स्मरण पिघले हृदय से करते हुए टी.एम. राजापादर नामक फ़ोरमैन निम्नलिखित उद्गार प्रकट करते हैं। वे *कल्कि* पत्रिका में कई वर्षों से फ़ोरमैन का काम करते आ रहे थे। वे कहते हैं :

"जनरल अस्पताल से फ़ोन आया। कल्कि साहब ही बोल रहे थे। उनकी आवाज़ लड़खड़ा रही थी। वे ज़रा नाराज़ भी थे। उन्होंने डाँटा, 'धारावाहिक उपन्यास की क़िस्त मेरे पास यहाँ तैयार पड़ी है। उसे ले जाने के लिए प्रेस से कोई क्यों नहीं आया?"

"मैंने झिझकते हुए कहा, "कोई ख़ास वजह नहीं है, जी। सदाशिवम साहब (पत्रिका के प्रबंध संचालक) तिरुप्पति गए हुए हैं। आपके स्वास्थ्य को देखते हुए आपको तकलीफ़ न देने के इरादे से...." बात को बीच में ही काटकर बोले, 'बस, बस, तुरंत अस्पताल पहुँच जाओ।' ऐसा कहकर कल्कि जी ने फ़ोन रख दिया।

"जैसे ही अस्पताल में उनके कमरे में मैंने पैर रखा, वे बोल उठे, 'देखो मैटर' तैयार है। ले जाकर तुरंत कंपोज़िग करके छपनेवाले फ़रमा में मिला दो।" मैंने पूछा, "सर, क्या इस हालत में भी लिखने का काम करना ज़रूरी है?"

"उनकी आँखें गीली हो गईं। बोले, "पाठकगण उपन्यास की अगली क़िस्त पढ़ने के लिए बेचैन रहते होंगे। अपनी क़लम से पढ़ने के लिए कुछ भी न देकर उनको वंचित करना क्या ठीक होगा? इसलिए बीच में स्थगित किए बिना लिखते ही जाना ही उचित है।" जिस सप्ताह उनका देहावसान हुआ, उस सप्ताह का "मैटर" तैयार करके देने के बाद ही उन्होंने आँखें बंद कीं।"[1]

कल्कि अपने पाठकों की जितनी क़दर करते थे और उनकी भावनाओं पर जितना ध्यान देते थे, उतना ही पाठक लोग भी उनकी रचनाओं का सम्मान करते थे और बड़े चाव से उनको पढ़ लेते थे। जब उनका आख़िरी ऐतिहासिक उपन्यास *पोन्नियिन् सेल्वन* धरावाहिक रूप में *कल्कि* पत्रिका में निकल रहा था, तब सभी आयु-वर्ग के लोग उसको पढ़ते आ रहे थे। उनमें एक वृद्धा एक क़िस्त भी छोड़े बिना पढ़ती आ रही थी। वह अक्सर घबराहट के साथ कहा करती थी, "इस उपन्यास के पूरा होने के पहले मैं मरना नहीं चाहती। हे ईश्वर, ऐसा करो कि मेरे मरने के पहले

---

1. *एष़ुत्तालर् कल्कि*, (सं.) क.पो. रत्नम, पृ. 26-27

यह उपन्यास ख़त्म हो जाए।"[1] यह वृद्धा प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती शिवशंकरी की नानी थीं।

इस उपन्यास के पहले *शिवकामियिन् शपथम* उपन्यास धारावाहिक रूप में *कल्कि* पत्रिका में निकल रहा था, तब भी एक रोचक घटना घटी। उस समय ऐसा हुआ कि मन्नार्‌कुडि शहर का कोई कल्कि चेट्‌टियार (सेठ) नामक व्यक्ति मर गया। एक अख़बार ने इस ख़बर को प्रकाशित करते समय ग़लती से या जानबूझकर जो शीर्षक दिया वह था—"मन्नार्‌कुडि में कल्कि का निधन।" इसे पढ़कर लोगों में हलचल मच गई। लोग घबरा उठे कि सचमुच ही कल्कि चल बसे। एक पाठक ने *कल्कि* पत्रिका के कार्यालय को अपनी परेशानी व्यक्त करके इस प्रकार पत्र लिखा : "कल्कि जी, आप मर गए। मगर इतनी जल्दबाज़ी क्यों? *शिवकामियिन् शपथम* पूरा करने के बाद ही आप मरते, तो कितना अच्छा होता!" इस घटना से यह सिद्ध होता है कि कल्कि का लेखन चुंबक की भाँति पाठकों को अपनी तरफ़ खींच लेता था। कल्कि के लेखन में अपार शक्ति विद्यमान थी, जो किसी भेदभाव के बिना युवा-वर्ग, वृद्ध जन, कम शिक्षित व्यक्ति, विद्वान लोग, पुरुष, स्त्री, गाँव के आदमी, शहर के निवासी आदि सभी तबक़े के लोगों को प्रभावित करके अपने वश में रखी हुई थी।

---

1. *कल्कि* पत्रिका, 20.9.1998, पृ. 6

8

कल्कि : एक महान व्यक्तित्व

"कल्कि हम सबके लिए एक बहुमूल्य संपत्ति छोड़कर गए हैं। वह है उनके द्वारा रचित साहित्य। अपने महत्त्व में कभी न घटनेवाले इस ऐश्वर्य में वे पूर्ण रूप से विद्यमान होकर अमर जीवन बिता रहे हैं।"

–सुन्दा[1]

तंजाऊर जिले में, पुत्तमंगलम नामक अत्यंत छोटे गाँव में, किसी भी दृष्टि से मामूली पृष्ठभूमि के साधारण परिवार में जन्म लेनेवाले रा. कृष्णमूर्ति आगे चलकर सारे तमिलनाडु में सर्वाधिक प्रसिद्ध लेखक के रूप में विकसित और स्थापित हुए। उन्होंने तमिष़ कथा साहित्य के क्षेत्र में अपने लिए इतना ज़बरदस्त स्थान बना लिया कि लोग उनका असली नाम तक भूल गए और इस भ्रम में पड़े रहे कि शायद उनका असली नाम ही कल्कि था। इस उपलब्धि का कारण उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। उनका व्यक्तित्व धीरे-धीरे मुकुलित होकर, फिर विकसित होकर, पूर्ण रूप से खिल उठकर सुगंधि फैलाने लगा। इस क्रमबद्ध विकास की पृष्ठभूमि में कई महापुरुषों का हाथ है।

कल्कि के व्यक्तित्व रूपी आलीशान महल का शिलान्यास बचपन में पड़ोस के घर के अध्यापक अय्यासामी अय्यर द्वारा हुआ। स्कूल में पढ़ते समय उन पर कांग्रेस के नेता टी.एस.एस. राजन, महाकवि सुब्रह्मण्य भारती और महात्मा गाँधी का प्रभाव पड़ा। इन महान व्यक्तियों के प्रभाव से उनका व्यक्तित्व निखरने लगा। वे देश के वास्ते अपनी शिक्षा अधूरी छोड़कर स्कूल से बाहर आ गए।

टी.एस.एस. राजन के परिचयात्मक पत्र ने कल्कि को तिरु.वि. कल्याणसुंदर मुदलियार की *नवशक्ति* पत्रिका में नौकरी प्राप्त करने का रास्ता खोल दिया। पत्रिका के संपादन से संबंधित सभी कार्यों में कल्कि को प्रशिक्षित कराने का श्रेय तिरु.वि.क. को मिलता है, लेकिन *नवशक्ति* में सर्जनात्मक लेखन के लिए गुंजाइश न होने से

---

1. *पोन्नियिन् पुदल्वर*, पृ. 867

कल्कि को उस पत्रिका से अलग हो जाना पड़ा। भारती भक्त नेल्लैयप्पर द्वारा सिफ़ारिश किए जाने पर कल्कि *आनंद विकटन* पत्रिका में पदार्पण कर सके।

शैव संत कवि माणिक्कवासकर (नवीं शताब्दी ई.) एक पद्य में शिवजी से पूछते हैं : "*मैं आपका भक्त हूँ, इससे आपने अपने आपको मुझे सुपुर्द* कर दिया। मैंने भी अपने को आपके चरणों में अर्पित कर दिया। हम दोनों में कौन ज़्यादा चतुर हैं?" इसी तरह कल्कि और *आनंद विकटन* एक-दूसरे की वृद्धि और विकास के लिए मददगार हो गए।

राजाजी के व्यक्तित्व के चुंबकीय प्रभाव ने भी कल्कि के चरित्र के विकास में काफ़ी योगदान दिया। प्रथम बार के कारावास के दौरान सदाशिवम जी की दोस्ती मिली, जिसका कल्कि पर अलग प्रभाव पड़ा। इन कई सज्जनों के सत्संग के परिणामस्वरूप कल्कि के मन में आठों पहर चौबीस घड़ी देशप्रेम की ज्वाला धधकने लगी। देशप्रेम से प्रेरित होकर ही कल्कि ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया। इस परिस्थिति में *आनंद विकटन* की नौकरी से इस्तीफ़ा देना आवश्यक हो गया, पर वे नहीं हिचके।

"यह दुनिया है बड़ी विशाल और इसमें संरक्षक मिलते हैं बहुतेरे"—यह एक प्राचीन तमिष़ उक्ति है। यह कल्कि के जीवन में सच निकली। टी.एस.एस. राजन, कल्याणसुंदर मुदलियार, महाकवि भारती, राजाजी आदि महान व्यक्तियों से प्रेरणा प्राप्त कर कल्कि का व्यक्तित्व मानसिक दृढ़ता और ईमानदारी की भावनाओं से आप्लावित हो गया। इन गुणों के द्वारा कल्कि को जीवन की संकटपूर्ण स्थितियों में सहारा मिला। उनके घनिष्ठ मित्र सदाशिवमजी उन्हीं के समान सोचते-विचारते और महसूस करते थे। उनका सहयोग प्राप्त होने पर कल्कि अपने ही नाम से एक निजी पत्रिका शुरू कर सके। अपनी *कल्कि* पत्रिका के माध्यम से वे एक सफल लेखक और कुशल पत्रकार के रूप में ख्याति के शिखर तक पहुँच सके। हाथ में निजी पत्रिका के होने से उन्होंने अपनी रचनाओं को उसमें लगातार प्रकाशित करके उसकी बिक्री बढ़ा दी। फलतः वे आर्थिक दृष्टि से इतने संपन्न हुए कि हमेशा मेहमानों के साथ खाते हुए या उनको खिलाते हुए सुविधाओं से भरपूर जीवन चलाने लगे, लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि जैसे ही वे नाम-यश, धन-दौलत से विभूषित होकर समाज में एक उच्च स्थान पर पहुँच गए, उनकी आयु के दिन गिने जाने लगे। पचपन वर्ष की अल्पायु में ही वे चल बसे।

कल्कि के व्यक्तित्व के विकास के इस अति संक्षिप्त परिचय पर ध्यान दें, तो तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं :

1. कल्कि का सारा जीवन बारी-बारी से कहीं प्रवेश और फिर वहाँ से निकास का ताँता-सा बन गया। किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में या किसी पत्रिका में उनके प्रवेश के लिए

कोई महापुरुष कारण बन जाते थे। कुछ समय बाद वे उस कार्य-क्षेत्र या पत्रिका से अलग हो जाते थे। इसके पीछे उनकी वैयक्तिक विशेषता और क्षमता कारण बन जाती थीं। इसलिए उनका जीवन हमेशा आगे की ओर, नवोदय की ओर अग्रसर होता रहा। उनकी जीवन-यात्रा को और व्यक्तित्व के विकास को तीन शब्दों में समेट सकते हैं—प्रवेश, प्रस्थान, नवोदय।

2. आज की कंप्यूटर की भाषा में कहना चाहें, तो कल्कि का जीवन एक इंटरनेट जैसा था। इसमें देश की सेवा, पत्रकारिता, सृजनात्मक लेखन और समाज सेवा, ये चारों अंश एक-दूसरे से मिले-जुड़े चलते आ रहे थे। ये अंश एक-दूसरे का आधार बनकर और एक-दूसरे का साथ देकर परस्पर गुंथे हुए थे।

सृजनात्मक लेखन ('एट्टिक्कु पोट्टि' शीर्षक लेख) के कारण कल्कि *आनंद विकटन* में नौकरी प्राप्त कर सके।

देशप्रेम के कारण व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने से कल्कि को *आनंद विकटन* की नौकरी छोड़ देनी पड़ी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में अपने ज़बरदस्त प्रभाव के कारण वे नेताओं की स्मृति में मंडपों का निर्माण, ज़रूरतमंद लेखकों के लिए आर्थिक सहायता आदि समाज-सेवा के कार्य अपने ऊपर ले सके।

कल्कि के सृजनात्मक लेखन, पत्रिका का संपादन ओर समाज-सेवा, इन तीनों की बुनियाद उनकी देशभक्ति थी; देश के प्रति कर्तव्य-भावना थी। जब वे *नवशक्ति* पत्रिका की नौकरी छोड़कर राजाजी के आश्रम में काम करने के लिए तिरुचेंगोडु गाँव को जा रहे थे, तब पत्रिका के संपादक कल्याणसुंदर मुदलियारजी ने विदा के समय यह आशीर्वाद दिया, "आप देश की सेवा और साहित्य की सेवा, इन दोनों क्षेत्रों में चमक उठेंगे।" आगे चलकर उनकी भविष्यवाणी कल्कि के जीवन में सच निकली।

3. कल्कि ने अपने जीवन में जो अपार सफलता और प्रसिद्धि प्राप्त की थी, वह उन्हें एक ही दिन में या रातों रात हासिल नहीं हुई थी। उनके जीवन में भी समस्याएँ, दुखद घटनाएँ, असफलताएँ, अड़चनें और धर्मसंकट की स्थितियाँ उमड़कर, बाधा बनकर आई थीं। दमा और जुकाम अभिन्न रूप से उनके साथ जुड़े रहते थे। इन प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करके और उनको पार करके वे जीवन और लेखन कार्य में सफल हो सके, तो इसका कारण यह था कि जीवन में कुछ कर दिखाने की लालसा उनके हृदय में आग के कण जैसी सदा प्रज्वलित रहती थी।

कल्कि ने गाँधीजी की जीवनी को *मांदरुक्कुल् ओरु दैय्वम* (इन्सानों में एक भगवान) शीर्षक देकर लिखा था। उसके प्रारंभ में कल्कि अंग्रेज़ी नाटककार बर्नाड शॉ की निम्नलिखित अभिलाषा उद्धृत करते हैं :

"मैं अपनी मृत्यु के घटित हो जाने के पहले अपनी सारी क्षमता का उचित ढंग से उपयोग कर देना चाहता हूँ। मैं जीवन को एक छोटी मामूली मोमबत्ती के रूप में नहीं देखता। एक अद्भुत महाज्योति के रूप में मैं उसका आदर करता हूँ। उस ज्योति को भविष्य की संततियों के हाथ में सौंपने के पहले उसे जितना अधिक प्रज्वलित रख सकूँ, उतना तेजोमय उसे रखना चाहता हूँ।" (पृ. vii)

कल्कि ने अपने जीवन की आख़िरी साँस तक बर्नाड शॉ की इस अभिलाषा का हूबहू अनुकरण किया। यह दुर्भाग्य की बात है कि तमिष़ भाषा रूपी माता को बहुमूल्य आभूषण जैसी अपनी रचनाओं से अलंकृत करनेवाले कल्कि ने जीवन के साठ वर्ष की पूर्ति होने के पहले ही संसार से विदा ले ली।

आज हमारे बीच में महापुरुष कल्कि सशरीर विद्यमान नहीं हैं, परंतु अपना व्यक्तित्व, अपना लेखन और अपनी पत्रिका, इन तीनों के माध्यम से उन्होंने समाज में जो उन्नत भावनाएँ जगा दीं, उसकी प्रतिध्वनि तमिष़ भूमि में और तमिष़भाषी लोगों के मन में निरंतर गूँजती रहेगी।

उपसंहार

अमर पुरुष कल्कि रा. कृष्णमूर्ति जी की उपलब्धियों की एक सूची बनाएँगे, तो वह लगभग इस प्रकार रहेगी :

- तमिष़ कथा-साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए एक विशिष्ट और गरिमामय स्थान उपलब्ध करा दिया।
- उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से यह सिद्ध कर दिया कि उन दिनों तमिष़ पत्रिका की बिक्री इतनी बढ़ाई जा सकती थी कि हर सप्ताह हज़ारों प्रतियाँ बिक सकें।
- अपनी पत्रिका में लगातार धारावाहिक रूप में उपन्यास प्रकाशित करके पाठकों के द्वारा इस रूप का स्वागत होना संभव बना दिया। फलतः तमिष़ पत्रिकाओं की सामग्री में धारावाहिक उपन्यास एक स्थायी अंग बन गया।
- कल्कि की बातचीत, उनके भाषण, लेखन और जीवन में स्वाभाविक रूप से हास्य का समावेश था। उसको अभिव्यक्ति देकर कल्कि ने सब प्रकार के लोगों को अपनी चिन्ताओं को भूलकर खुश होने का मौक़ा दिया।
- जिन व्यक्तियों ने उनके लेखन या विचारों की कटु आलोचना की थी, उनकी भी ज़रूरत पड़ने पर सहायता प्रदान करके कल्कि ने अपने उदार हृदय का परिचय दिया।
- देश की आज़ादी की ख़ातिर वे तीन बार जेल गए थे।

- जो नेता लोग मनुष्यों के बीच महामानव बनकर आदर्श जीवन बिताते हुए चल बसे, उनके लिए स्मारक मंडपों का निर्माण कराने तथा उस काम के लिए पाठकों से धन जुटाने में वे तत्परता से लगे रहे।
- गाँधीजी की आत्मकथा का तमिष़ अनुवाद *सत्य सोधनै* (सत्य का परीक्षण) शीर्षक से करके तमिष़मात्र जाननेवाले पाठकों के लिए लाभ पहुँचाया।
- यात्रा-साहित्य के सृजन में आपने अपनी विशिष्ट छाप अंकित कर दी।
- क्षमता और योग्यता से युक्त होने पर भी जीवन में उन्नति न होने से तड़पनेवाले युवा-वर्ग को कल्कि ने अपने लेखों के द्वारा प्रेरणा देकर प्रोत्साहित किया।
- किसी व्यक्ति, कार्यक्रम, पुस्तक आदि का मूल्यांकन करते समय कल्कि निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाकर निडरता से अपने विचार व्यक्त करते थे।
- कल्कि एक अच्छे गीतकार भी थे। दशकों बाद भी 'मीरा' (तमिष़) फ़िल्म का वह अविस्मरणीय गीत, जिसकी प्रथम पंक्ति है 'काट्रिनिले वरुम् गीतम' (हवा में तिरकर आता है वो गीत/आँखों को गीला बनाकर उमड़ता है वो गीत), कल्कि ने ही लिखा था। उन्होंने लगभग 30 गीत लिखे हैं, जो संगीतज्ञों द्वारा अब भी गाए जाते हैं।
- तमिलनाडु में होनेवाले संगीत के कार्यक्रमों में तेलुगु के बदले तमिष़ में ही सभी या अधिकांश गीतों को गाने पर ज़ोर देकर उन्होंने आंदोलन चलाया।
- डॉ. टि.एस.एस. राजन, तिरु.वि. कल्याणसुंदर मुदलियार, राजाजी, टी.के. चिदंबरनाथ मुदलियार और सदाशिवम—इन पाँच प्रतिभाशाली व्यक्तियों के साथ घनिष्ठ संबंध का गौरव उन्हें प्राप्त था।

कल्कि अपनी पत्रिका के द्वारा नित नए विचारों को प्रकाश में लाकर और पाठकों के दृष्टिकोण को नई दिशा में मोड़कर एक नए युग को स्थापित कर देना चाहते थे। यही उनका एकमात्र उद्देश्य था। इस महान उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए वे तमिष़ साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में तीस वर्ष निरंतर क़दम बढ़ाते रहे।

इन कार्यों के अतिरिक्त भी कल्कि ने तमिष़भाषी समाज के हित के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो-जो प्रशंसनीय कार्य किए थे, उनकी सूची अंतहीन ही रहेगी। उनकी उपलब्धियों से प्रभावित और सेवाओं से लाभान्वित तमिष़भाषी जनता उन्हें कृतज्ञतापूर्वक अपनी याद में दीर्घ काल तक रखेगी। तमिष़भाषी लोगों के दिल-दिमाग़ पर *कल्कि* नाम के जादू-भरे तीन अक्षर सब काल के लिए अंकित और जगमगाते हुए पाए जाएँगे।

कल्कि के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

1999 सिंतबर 9 : तंजाऊर ज़िले में पुन्नमंगलम गाँव में जन्म। पिताजी : रामस्वामी अय्यर, माताजी : तैयलनायकी।

1971 तिरुच्चि शहर में जाकर स्कूल की पढ़ाई जारी रखना।

1921 जनवरी : स्कूल की पढ़ाई अधूरी छोड़कर स्वतंत्रता के आंदोलन में भाग लेना।

सितंबर : गाँधीजी के दर्शन—उनके प्रति भक्ति भावना में तीव्र वृद्धि।

1922 प्रथम बार कारावास का जीवन—एक वर्ष सख़्त कारावास की सज़ा। जेल में प्रथम उपन्यास *विमला* की रचना करना। जेल में ही एक अन्य सत्याग्रही सदाशिवम से परिचित होना और दोनों में जीवन भर की गहरी मित्रता स्थापित हो जाना।

1923 राजाजी से परिचित होना। जीवन भर राजाजी का संरक्षण मिलना अक्टूबर : *नवशक्ति* पत्रिका में सहायक संपादक के रूप में नियुक्ति।

1924 मार्च : विवाह। धर्मपत्नी का नाम रुक्मिणी।

1927 पुस्तक प्रकाशन : (2) *शारदैयिन् तंत्रम* शीर्षक कहानी-संकलन, (2) गाँधीजी की आत्मकथा का अनुवाद *सत्य सोधनै* नाम से।

1928 *नवशक्ति* पत्रिका से अलग होना।

जुलाई : *आनंद विकटन* पत्रिका के संपादक एस.एस. वासन से परिचय।

अगस्त : 'कल्कि' उपनाम से *आनंद विकटन* में 'पट्टिक्कु पोट्टि' शीर्षक प्रथम लेख का प्रकाशन। निरुचेंगोडु गाँव में स्थित राजाजी के आश्रम में शामिल होना।

1929 राजाजी द्वारा संचालित *विमोचनम* पत्रिका में नौकरी।

1930 दूसरी बार कारावास—छह महीने की सज़ा।

1931 *आनंद विकटन* पत्रिका में उप संपादक बनना।

1932 टी. के. चिदंबरनाथ मुदलियार (जो कंब रामायण के महापंडित थे) के साथ घनिष्ठ मित्रता स्थापित होना।

1933 अप्रैल 8 : पुत्री आनंदी का जन्म।

1935 अगस्त 20 : पुत्र राजेन्द्रन का जन्म।

1937 *आनंद विकटन* में कल्कि के प्रथम सामाजिक उपन्यास *कलवनिन! कादलि* का धारावाहिक रूप में प्रकाशन, जिससे प्रसिद्धि मिलना।

1938 मई : प्रथम बार श्रीलंका की यात्रा।

1939 फ़िल्म की कथा के रूप में *त्यागभूमि* नामक उपन्यास लिखना।

1991 जनवरी : *आनंद विकटन* की नौकरी से त्यागपत्र। तीसरी बार कारावास की सज़ा तीन महीनों के लिए।

अगस्त 1 को सदाशिवम जी के सहयोग से *कल्कि* नाम से निजी पत्रिका शुरू करना।

संगीत के कार्यक्रमों में तमिष़ के गीतों को ही गाने के लिए आग्रह करके जो आंदोलन चल पड़ा, उसमें तीव्र रूप से भाग लेना।

1941-42 स्वतंत्रता को तुरंत प्राप्त करने के लिए देश के विभाजन का माँग को समर्थन करने के कारण राजाजी बदनाम हुए, तब उनका पक्ष लेकर कल्कि ने बहुत-से लेख लिख डाले।

1944 जनवरी : उत्कृष्ट रचना *शिवकामियिन् शपधथम* का धारावाहिक रूप में *कल्कि* पत्रिका में प्रकाशन शुरू होना।

1944-46 फिर एक बार राजाजी के विचारों के समर्थन में बहुत-से लेखों का प्रकाशन।

1945 प्रसिद्ध तमिष़ फ़िल्म 'मीरा' का प्रदर्शन। कल्कि ने इसके संवाद और गीत लिखे।

1947 कल्कि के अथक प्रयत्नों से महाकवि भारती के लिए एक स्मारक मंडप उनके जन्मस्थान एट्टयपुरम में निर्मित होना।

1948 मार्च : *कल्कि* पत्रिका में धारावाहिक रूप में *अलै ओसै* उपन्यास का प्रकाशन शुरू होना। कल्कि इस उपन्यास को ही अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना मानते थे।

1949 महात्मा गाँधीजी के लिए चेन्नै में स्मारक मंडप स्थापित करने के उद्देश्य से पाठकों से चंदा करना।

1950 विशालकाय उपन्यास *मोन्नियिन् सेपवन* धारावाहिक रूप में *कल्कि* में शुरू होना।

1950-51 दूसरी और तीसरी बार श्रीलंका की यात्रा।

1951 तमिष़ लेखक संघ का सभापति बनना।

1953 सितंबर : तिरु. वि. कल्याणसुंदर मुदलियार के लिए एक यादगार बनवाने का निश्चय करके प्रयत्न शुरू करना।

अक्टूबर : गाँधी स्मारक मंडप के उद्घाटन समारोह में भाग लेना।

1954 फ़रवरी : कल्याण सुंदर मुदलियार स्मारक मंडप की नींव रखने के समारोह में भाग लेना।

दिसंबर 5 : देहावसान।

कल्कि की रचनाएँ

1. कहानी संकलन

1. अबलैयिन कण्णीर्
2. अमर वाष्वु
3. ओट्रै रोना
4. कणैयाषियिन् कनषु
5. ज़मींदार मकन्
6. तिरुवणुंदूर शिवकोषुंदु
7. पुन्नैवनन्तु पुलि
8. बैंकर विनायक राव
9. मयिल्विष़ि मान्
10. मयिलै काळै
11. माडतेवन् सुनै
12. वीणै भवानी
13. शारदैयिन् तंत्रम्

2. उपन्यास

1. अरुंबु अंबुकळ्
2. अलै ओसै
3. कल्वनिन् कादलि
4. त्यागभूमि
5. देवकियिन् कणवन्
6. पार्निबन् कनवु
7. पोन्नियिन् सेलवन्
8. पोय्मान् करडु
9. मकुटपति
10. मोहिनी नीवु
11. विमला (अप्राप्य)
12. शिवकामियिन् शपथम
13. सोलैमलै इळवरसि

3. निबंध संकलन

1. इसै विरुन्दु
2. एट्टिक्कु पोट्टि
3. ओ मांपष़मे
4. कण्कोळ्ळा काट्चिगळ्
5. कण्णीराल् कात्त पयिर
6. कलै चेलवम
7. कुमरियुम् कुन्रमुम
8. निरुमकलुम् कलैमकलुम
9. भारती पैदा हुए
10. महात्मावुम् महाकवियुम्
11. मूनुरु मादम् कडुंकावल्
12. संगीत योगम्

4. रेखाचित्र

1. यार् इन्द मनिदर्गळ्

5. जीवनी

1. नाट्टुक्कु ओरु पुदलवद्
2. मांदरुक्कुळ् ओरु देद्वम् (दो भाग)

6. यात्रा साहित्य

1. इलंकैयिल् ओरु वादम्
2. इलंकै प्रयाणम्
3. ठाकुर दरिसनम्
4. देयूव दरिसनम्
5. नम् नदैयर् सेयूद विन्दैगळ्
6. स्वप्न लोकम्

7. अनुवाद

1. सत्य शोधनै (दो भाग)
2. नमदु तायूनाडु
3. युव भारतम्

रा. कृष्णमूर्ति द्वारा प्रयुक्त उपनाम

कल्कि में एक विशेष प्रवृत्ति यह दिखाई पड़ी कि उनका जिस विषय पर लेखादि लिखना था, उसके अनुरूप वे एक विशिष्ट उपनाम रख लेते थे। उन उपनामों की सूची यहाँ दी जा रही है।

अगस्तियर (अगस्त्य)
ओरु तमिष़न (एक तमिष़भाषी व्यक्ति)
ओरु तरिकारर (एक जुलाहा)
ओरु ब्राह्मण श्लैञन (एक ब्राह्मण युवक)
कर्नाटकम (परंपरावादी)
कल्कि
गुहन (रामायण का निषादराज)
ग्रामवासी
चेन्नैवासी
तमिष़ तुंबि (तमिष़ भ्रमर)
तमिष़ तेनी (तमिष़ मधुमक्खी)
तमिष़मकन (तमिष़ प्रजा)
तुदिक्कैयान (सूँडवाला/गणेश जी)
तेनी (मधुमक्खी)
परिसोदकर (जाँच करनेवाला)
पूरण सुंदतिरम (पूरी आज़ादी)
पेट्रोत (पिता)
बृहस्पति
यमन (यमराज)
रा. कि. (रा. कृष्णमूर्ति)
लांगूलन (वानर)
वषिपोक्कन (राही)
वालन! (पूँछवाला)
विकटन (विदूषक)
विवसायी (कृषक)
विसिरि (हाथ का पंखा)

परिशिष्ट 4

सहायक ग्रंथ-सूची

लेखक	ग्रंथ
1. अशोकमित्रन तथा दासन, एन.आर.	तमिष़ सिरुकदैकळिल् मूनुरु पार्वैकळ्
2. अरियरत्नम, राज.	कल्कि पिरंदार
3. अरुणाचलम, सभा.	तमिष़ नावलकळिल् गाँधीय ताक्कम्
4. इरत्नम, का. पो. (सं)	एपुत्ताळर् कल्कि
5. राजगोपालन, ति.	परलाट्रु नावलकळिल् वरलाट्रु चेयूदिकल
6. रामलिंगम, मा.	इरुपदाम् नूट्राण्डु तमिष़ इलक्कियम्
7. रामलिंगम, मा.	पुनैकदै वकम
8. रामलिंगम, मा.	विड्डुनलैक्कु मुन् पुदयि तमिष़ चिरुकदैकळ्
9. राजशेखरन, रा. (सं.)	तमिष़ नावल ऐम्बदु पार्वै
10. कला के ठाकर	कल्कि-मुंशी वरलाट्रु नावलकळ्ः ओर् ओप्पीडु
11. कला के ठाकर	कल्कि- अुमदम्
12. केशवन, गो.	तमिष़ चिरुकदैकळिल् उरुवम्
13. शंकरन, एस. (संकलित)	कल्कियिन् नगैच्चुवै
14. शंकरन, एस.	कल्कियिन् वर्णनैकळ्
15. चिदंबरनाथन चेट्टियार, अ.	तमिषिल् चिरुकदैयिन् तोट्रमुम् वलर्चियुम्
16. शिवतंबि, का.	तमिषिल् चिरुकदैयिन् तोट्रमुम् वलर्चियुम्
17. चिन्त अण्णामलै	सोन्नाल् नंबमाट्टरिकळ्
18. चीनीचामी, तु. (सं.)	कलिकयिन् कदै उलकम्
19. सुब्रह्मणियन, सुकि.	आयिरंकाल् मंडपम्
20. सुंदरराजन पे. को. तथा शिवपादसुंदरम, सो.	तमिष़ नावल नूट्रांडु वरलारुम् वळर्चियुम्
21. सुंदरराजन पे. को. तथा शिवपादसुंदरम, सो.	तमिष़िल चिरुकदै वरलारुम् वळर्चियुम्
22. सुंदा	पोन्नियिन् पुदल्वर

23.	सुब्र. बालन (संकलित)	एषुत्तुलकिल् अमरतारा
24.	सुब्रह्मण्यम, क.ना.	पडित्तिरुक्किरीरकळा (भाग 1)
25.	सुब्रह्मण्य अय्यर, ए.वी.	तर्काल तमिष़ इलक्कियम्
26.	सेन्दिलनाथन, च.	तमिष़ चिरुकदैकळ् ओरु मदिप्पीडु
27.	सि.सु. चेल्लप्पा	तमिष़ चिरुकदै पिरक्किरदु
28.	सेलवनायकम, वि.	तमिष़ उरैनडै वरलारु
29.	सोमले	पल्सुवै कट्टरैकळ्
30.	दंजयुधुम, इरा.	तमिष़ चिरुकदै मुन्नोडिकळ्
31.	दंजयुधुम, इरा.	तर्काल तमिष़ इलक्कियम
32.	दंजयुधुम, इरा.	भारती मुदुल् सुजाता वरै
33.	दंजयुधुम, इरा.	नावल वलम
34.	दिरवियम, का.	देसियम वलर्त्त तमिष़
35.	नवीनन	कलिकयिन् कनवु
36.	भगीरथन	कल्कि निनैवुकळ्
37.	पूवण्णन	कल्कियिन् वरलाट्रु नावलकळ्
38.	मणि, पी.एस.	कल्कि शकाब्दम्
39.	मोहन, इरा. (सं)	नावल वळर्च्चि
40.	मोहन, इरा. (सं)	कल्कि नूरु
41.	मोहन, इरा. (सं)	कल्कि कदैकळ् (दो भाग)
42.	मोहन, इरा. (सं)	कल्कि कट्टुरैकळ् (तीन भाग)
43.	मीनाक्षी मुरुकरत्नम	कल्कियिन् चिरुकदै कलै
44.	रंगराजन, नि.भी. (संकलन)	कल्कि कळंजियम
45.	राजाजी	राजाजी कट्टुरैकळ्
46.	वरदराजन, मु.	तमिष़ इलक्किय वरलारु
47.	वल्लि कण्णन	भारतिक्कु पिन् तमिष़ उरैनडै
48.	वानति तिरुनावुक्करसु	निनैक्क निनैक्क
49.	विश्वनाथन, ई. स.	कट्टुरै मलर
50.	वीरासामी, ना. वे.	कल्कि-अकिलन पडैप्पु कलै
51.	वीरासामी, ना. वे.	तमिष़िल् समूह नावलकळ्
52.	वीरासामी, ना. वे.	तमिष़ नावल इवगैकळ्
53.	वीरासामी, ना. वे.	तमिष़ नावल इयल
54.	वेदसहाय कुमार, एम.	तमिष़ चिरुकदै वरलारु
55.	Sunda (M.R.M. Sundaram)	Kacki : A Lifesketch

कल्कि उपनाम से प्रसिद्ध रा. कृष्णमूर्ति (1999-1954) तमिष़ कथा-साहित्य के लेखकों में अग्रणी हैं और तमिष़ गद्यशैली के निर्माताओं में एक हैं। उनका जन्म एक अभावग्रस्त ग्रामीण परिवार में हुआ था। मात्र अपने परिश्रम के बल पर उन्होंने धीरे-धीरे जीवन में उन्नति प्राप्त कर ली। उन्होंने तमिष़ गद्य-लेखन में नए प्राण फूँक दिए। गद्य-शैली में हास्य का समावेश करना और प्राचीन इतिहास के प्रति बहुधा रसोईघर में बंद स्त्रियों के मन में भी उत्सुकता पैदा करना, ये दोनों कल्कि की विशेष उपलब्धियाँ थीं। श्रमिकों के प्रसिद्ध नेता और तमिष़ के विद्वान तिरु. वि. कल्याणसुंदर मुदलियार द्वारा वे पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रशिक्षित हुए। राजाजी के सत्संग से सुसंस्कृत सज्जन बने। आनंद विकटन पत्रिका में नौकरी करके गहरा अनुभव प्राप्त किया, वे इतने लोकप्रिय लेखक बने कि जब उन्होंने अपनी निजी पत्रिका शुरू कर दी, उसका नाम भी कल्कि रख दिया। अपनी पत्रिका के द्वारा उन्होंने तमिष़ पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ी। कल्कि स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर तीन बार जेल गए। लेखन द्वारा वे अपने विचारों को निडरता से प्रकट करते थे। वे उदार हृदयवाले थे। जिन लोगों ने उनके लेखन की कटु आलोचना की थी, उनकी भी ज़रूरत पड़ने पर मदद करने से वे कभी हिचके नहीं। उनका लेखन सभी स्तरों के पाठकों को चुंबक की भाँति खींच लेता था। संक्षेप में, कल्कि एक युग-प्रवर्तक गद्यकार थे।

इस विनिबंध के लेखक **डॉ. रा. मोहन** मदुरै महानगर में कामराज विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य विभाग के अध्यक्ष हैं। इन्होंने तमिष़ गद्य-साहित्य से संबंधित 50 पुस्तकें लिखी हैं। वे विभिन्न पुरस्कारों से समादृत हुए हैं। उनका प्रस्तुत विनिबंध एक आदर्श व्यक्ति और सफल लेखक के रूप में कल्कि के व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

अनुवादक **डॉ. एन. श्रीधरन** चेन्नै प्रेसीडेन्सी कॉलेज के हिन्दी विभाग के अवकाश-प्राप्त अध्यक्ष हैं। इनकी 25 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें साहित्य अकादेमी के लिए किए बिहारी, प्रेमचंद और जैनेन्द्र कुमार पर लिखित विनिबंधों के अनुवाद भी सम्मिलित हैं।



ISBN 81-260-2528-X

मूल्य : पच्चीस रुपये



साहित्य अकादेमी